महात्मा गान्धी लिखित

मेरे जेलके अनुभव ।

"है वह कारागार पूज्य अतिशय मेरे हित ।
जहां जन्म ले किया कृष्णने था दुख मोचित ॥"

प्रताप-पुस्तक-माला की १ ली पुस्तक।

मेरे जेल के अनुभव।

है वह कारागार पूज्य अतिशय मेरे हित।
जहां जन्म ले किया कृष्ण ने था दुख मोचित॥

महात्मा गांधी द्वारा लिखित।

प्रकाशक—
शिवनारायण मिश्र, वैद्य,
प्रताप पुस्तकालय
कानपुर।

कमर्शल प्रेस, कानपुर में मुद्रित।

चतुर्थ संस्करण
३०००

मार्च १९२२

मूल्य छः आने
।=)

दो बातें।

हमें इस बात की आवश्यकता नहीं मालूम होती कि यहां इस पुस्तक के लेखक महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी का परिचय दिया जाय; क्योंकि उनकी कीर्ति-कौमुदी केवल भारतवर्ष ही में नहीं बल्कि सारे संसार में प्रकाशमान है। हां, इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में इतना कहा जा सकता है कि यह पुस्तक उस महात्मा की लिखी हुई है जो न केवल सदा देश और जाति के नाम पर कारागार को अपना पूज्य देवालय मानता रहा है या जिसका जन्म दुखियों के दुख दूर करने और निर्बलों की सहायता के लिए हुआ है; वरन् बलवानों और अन्यायियों को बदला देने के लिए भी, मगर घूंसे का जवाब घूंसे से न देकर, बल्कि चुपचाप, और भी अधिक अन्याय सहते हुए, तथा जिसने 'सफलता की कुञ्जी' अन्याय और ज़ुल्म सहने—सत्याग्रह—को ही मान रखा है, और जिसका विश्वास है कि "भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधिकार प्राप्त करने पड़ेंगे", जिसका यह भी दृढ़ विश्वास है कि यदि हमें सफलता नहीं प्राप्त होती तो यह हमारी अन्याय सहने की शक्ति की कमी—हमारे सत्याग्रह की कमज़ोरी—है। महात्मा को अपने इन्हीं सिद्धान्तों के लिए दक्षिण अफ्रिका में कई बार जेल जाना पड़ा था।

इस स्थान पर यदि इस बात का वर्णन संक्षेप में कर दिया जाय कि किन कारणों से— किन असुभीतों या कष्टों

को दूर करने के लिए—महात्मा जी को जेल जाना पड़ा था तो अनुचित न होगा, बल्कि एक प्रकार इस से पाठकों की ज्ञान-वृद्धि ही होगी।

भारत से कितने ही कुली प्रतिवर्ष दक्षिण अफ्रिका को भेजे जाते थे। भारत-सरकार की सम्मति से ट्रांसवाल की सरकार ने यहां के शर्तबन्द भारतीय मज़दूरों पर प्रतिवर्ष ३ पौंड का कर लगाया था। फिर १९०७ ईसवी से उसका व्यवहार किया जाने लगा। यह क़ानून बड़ा ही अपमानजनक था। उसके अनुसार १६ वर्ष से अधिक अवस्था वाला प्रत्येक भारतवासी अपना नाम रजिस्टर कराने पर बाध्य था। तरह तरह से भारतीयों की १८ अँगुलियों की छाप ली जाती थी। उनके लिए 'कुली' शब्द का उपयोग उसमें खुल्लमखुल्ला किया था, यद्यपि वहां प्रतिष्ठित सभ्य, सुशिक्षित और धन-सम्पन्न भारतवासी भी कितने ही हैं। उनको "एशियाटिक रजिस्ट्रेशन सार्टिफ़िकट" नामक एक परवाना हमेशा साथ रखना पड़ता था। इस क़ानून को भङ्ग करने वाला भारी से भारी सज़ा का पात्र समझा जाता था। इस अमानुषिक, अपमान-जनक और निर्दयता तथा अन्याय-मूलक क़ानून का तीव्र विरोध वहां की, भारतीय जनता ने किया—विलायत तक डेपुटेशन भेजा गया—पर नतीजा कुछ न निकला। क़ानून पास होगया, और सम्राट एडवर्ड ने भी उसे पसन्द कर लिया। बस, फिर क्या देर थी। अफ़रीका-स्थित भारतवासियों ने कर्मवीर महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ दी। समस्त नर-नारियों और बालकों तक ने इसमें योग दिया। सैकड़ों आदमी पशुओं की तरह जेल में ठूँस दिये गये। महात्मा गांधी को भी जनवरी

और अगस्त १९०८ में दो बार, जेलख़ाने की हवा खानी पड़ी। इतना होने पर भी—भारतवासियों के इतना प्रतीकार करने पर भी—वहां की सरकार टस से मस न हुई। १९११ तक यही अन्धाधुन्ध जारी रहा। इसी बीच भारत में भी खूब आन्दोलन किया गया, तब ट्रांसवाल सरकार ने एक चाल चली। उसके करता धरता जनरल स्मट्स ने महात्मा गांधी को बुलाया और क़ानून के सुधार करने का अभिवचन देकर उनका नाम रजिस्टर्ड करा लिया। गांधी जी तो ठहरे पूरे महात्मा। वे "आत्मवत् सर्वभूतेषु" के क़ायल हैं। उन्होंने कहा—इतना बड़ा उच्च अधिकारी क्या दग़ाबाज़ी करेगा! उस के वचन पर विश्वास करके उन्होंने इस शर्त पर कि यह क़ानून रद्द कर दिया जाय अपना नाम रजिस्टर करा लिया। अन्य भारतवासियों ने भी ऐसा ही किया। पर सरकार ने क़ानून में कुछ भी रद्दोबदल न किया; उसे ज्यों का त्यों क़ायम रक्खा। अब तो लोगों के क्रोध का पारावार न रहा। वे फिर से सत्याग्रह का झण्डा खड़ा करने के ही इरादे में थे कि १९१२ में मिस्टर गोखले वहाँ पधारे। ट्रांसवाल-सरकार ने उन से वादा किया कि हां, क़ानून में सुधार कर दिया जायगा। पर किया कराया कुछ नहीं! झूठ बोल कर अपना काम बना लेने में तो वहां की सरकार अपनी कुछ हानि समझती ही नहीं। क़ानून में सुधार करना दूर रहा। १९१३ में उसने एक नया क़ानून बना डाला। उसने यह क़ानून क्या बनाया, भारतवासियों के घावों पर नमक छिड़क दिया। उसके अनुसार वही भारतवासी केप कालोनी में जा सकते थे जो अंगरेज़ी भाषा के बड़े पण्डित हों। इसके पहले वे आज़ादी से वहां जा आ सकते थे। फ्री स्टेट में जानेवाले भारतवासियों को यह लिख देना पड़ता कि वहां जाकर हम

व्यापार और खेती बारी न करेंगे। केवल मज़दूरी कर के अपना गुज़र करेंगे। सबसे बड़ी आक्षेप योग्य और हृदय पर चोट पहुंचाने वाली बात यह थी कि जिस धर्म्म में एक से अधिक विवाह कर लेने की रीति है उस धर्म्म के अनुसार किया हुआ विवाह अप्रामाणिक माना जाता। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को अपना विवाह न्यायालय में जाकर रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा अर्थात् उनकी स्त्रियां रखेली समझी जांयगी। इस क़ानून के भी ख़िलाफ़ भारतवासियों ने अपनी आवाज़ उठाई। पर उसकी कुछ भी परवा न की गई और क़ानून पास हो गया। बस, फिर से सत्याग्रह आरम्भ कर दिया गया। इस में फिर तीसरी बार महात्मा जी को जेल जाना पड़ा। इस बार यह आन्दोलन क्या अफ्रिका क्या भारत सब कहीं बड़े ज़ोर शोर से फैला। तब एक कमीशन बैठाया गया। उस में योग देने के लिए महात्मा गांधी छोड़ दिये गये। अन्त में कमीशन की सूचना के अनुसार २ जून १६१४ को सरकार ने एक "इंडियन रिलीफ़ बिल" बनाया। जुलाई १६१४ में सम्राट ने भी उसकी स्वीकृति दे दी तब जाकर इतनी हाय-हत्या के बाद उनकी अधिकांश शिकायतें दूर हुईं। अस्तु।

इस से पाठक महात्मा जी के बार बार जेल जाने का कारण भली भांति समझ गये होंगे। जेल में उन्हें क्या तकलीफ़ और आराम मिला तथा भारतवासी क़ैदियों के साथ वहां कैसा सलूक किया जाता है इसका जो अनुभव उन्हें जेल में हुआ उसी का सविस्तर वर्णन महात्मा जी ने अपनी ही क़लम से आगे के पन्नों में किया है।

यह इस पुस्तक का हिन्दी में तीसरा संस्करण है। प्रथम

संस्करण में इस पुस्तक का मूल्य आठ आने रक्खा गया था किन्तु इस विचार से कि इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा है, और यह तभी हो सकता है जब पुस्तक सस्ती हो। अतः काग़ज़ आदि की इतनी मंहगी होने पर भी दूसरे संस्करण में ॥) के बजाय ।=) आना मूल्य कर दिया गया है। हम आगे काग़ज़ आदि के मूल्य में कमी होते ही और भी सस्ता संस्करण निकालेंगे। अन्त में हम महात्मा गांधी जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन की हमें सहर्ष आज्ञा दे दी।

प्रताप कार्य्यालय,
कानपुर,
१५—६—१६

विनीत,
प्रकाशक।

सूची।

मेरे जेल के अनुभव।

प्रथम बार।

दूसरी बार।

तीसरी बार।

महात्मा गांधी
लिखित
मेरे जेल के अनुभव

[प्रथम बार]

मैं तथा मेरे अन्य भारतवासी भाइयों ने थोड़े ही दिन जेलख़ाने की हवा खाई है। तथापि, उतनी ही अवधि में जो कुछ अनुभव मुझे वहां प्राप्त हुए हैं वे औरों के लिए भी उपयोगी हैं। लोगों ने उनके जानने की उत्सुकता भी प्रकट की है। अतएव मैं उन्हें प्रकट करता हूं। लोगों का यह ख़याल है कि भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधिकार प्राप्त करने पड़ेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि लोग जेल के दुःखों और सुखों से जानकार हो जांय। कितनी ही बार तो लोग अपनी ही कल्पना से उस दशा को भी दुःखमयी मान लेते हैं जो वास्तव में वैसी नहीं। इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रत्येक वस्तु या विषय के सत्य-ज्ञान से लाभ ही है। अच्छा, तो अब हमारी काराकहानी सुनिए :—

१० जनवरी सन् १९०८ के दोपहर को दो बार हमारे जेल में धांध दिये जाने की गप उड़ी और अन्त में वह वक्त आ ही गया! मेरे साथियों को और मुझे सज़ा दी जाने के पहिले प्रिटोरिया (ट्रांसवाल) से तार आ गया था। उसमें लिखा था कि गिरफ़्तार-शुदा अर्थात् पकड़े गये

हिन्दुस्तानी नए क़ानून के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं हुए, अतएव उन्हें तीन महीने की कड़ी क़ैद की सज़ा दी गई। अर्थ-दण्ड भी उन्हें दिया गया। यदि जुरमाना न दाख़िल करें तो और तीन महीने क़ैद भोगने की आज्ञा थी। यह सुन कर मैं दुःखित हुआ। मैंने मजिस्ट्रेट से अधिक से अधिक सज़ा मांगी, पर वह न मिली। हम सब को दो महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। मेरे साथ मिस्टर पी० के० नायडू, मि० सी० एम० पिल्ले, मि० कडवा, मि० ईस्टन तथा मि० फोरटुन थे। पिछले दो सज्जन चीनी हैं। सज़ा मिल चुकने पर मैं अदालत के पीछे वाले क़ैदख़ाने में दो चार मिनट तक रक्खा गया। इसके बाद मैं चुपचाप एक गाड़ी में बिठाया गया। गाड़ी रवाना हुई। उस समय मेरे मन में कितनी ही तरङ्गें उठीं। क्या किसी दूर स्थान में ले जाकर राजनैतिक क़ैदियों का सा बर्ताव मेरे साथ किया जायगा? क्या और लोगों से मैं अलग रक्खा जाऊंगा? या क्या मुझे 'जोहान्सबर्ग' के सिवा और कहीं ले जांयगे? ऐसे कितने ही विचार मेरे मन में आये। मेरे साथ जो जासूस सिपाही था वह मुझ से माफ़ी मांग रहा था। मैंने कहा कि मुझ से माफ़ी मांगने की ज़रूरत नहीं, क्यों कि मुझे जेलख़ाने में ले जाना तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही है।

क़ैदख़ाना।

मुझे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि मेरी तरङ्गें व्यर्थ थीं। क्योंकि जहां और क़ैदी गये थे वहीं मुझे भी जाना पड़ा थोड़ी ही देर में और साथी भी आ गये। हम सब मिले। पहिले तो हम सब तौले गये। फिर सब के अंगूठे की निशानी ली गई। इसके बाद सब नंगे किये गए। तब हमें जेल की

पोशाक दी गई। पोशाक में इतनी चीज़ें हमें मिलीं:—काली पतलून, क़मीज़, क़मीज़ के ऊपर का कपड़ा (जिसे अंगरेज़ी में 'जंपेर' कहते हैं) टोपी और मोज़ा। फिर हमें एक थैली दी गई। उसमें हमारे पुराने कपड़े रक्खे गये। तब हमें अपनी कोठरियों में भेजा गया। भेजने के पहिले प्रत्येक को आठ औंस रोटी के टुकड़े दिये गये। फिर हमें काफ़िरों के क़ैदख़ाने में लेगये।

काफ़िर और भारतीय एक।

वहां हमारे कपड़ों पर "N" यह छाप लगाई गई। अर्थात् हम 'नेटिवों' की पंक्ति में रक्खे गये। हम सब तकलीफ़ें सहने को तैयार थे पर यह नहीं जानते थे कि हमारी ऐसी दुर्गति होगी! गोरों के साथ न रक्खा जाना तो हमें न खलता परन्तु ठेठ काफ़िरों के साथ रहना हमें बरदाश्त न हुआ। यह देख कर हमने सोचा कि सत्याग्रह की लड़ाई जैसे महत्व की है वैसे ही वह समय पर शुरू भी हुई है। इस से यह भी सिद्ध हो गया कि यह क़ानून क्या है मानों भारतीयों को पूर्णतः तहस-नहस करनेवाला ख़ूनी शस्त्र है। हम काफ़िरों के साथ रक्खे गये, यह भी अच्छा ही हुआ। उन लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार इत्यादि बातें जानने का यह बहुत अच्छा मौक़ा मिला। दूसरे हमें यह भी ठीक न जँचा कि उन लोगों के साथ रहने में हम अपनी हतक समझें। तथापि साधारण रीति से यही कहना पड़ता है कि भारतवासियों को अलग ही रखना चाहिए। हमारी कोठरियों के बग़ल में ही काफ़िरों की कोठरियां थीं। उनमें तथा बाहर के मैदान में वे कोहराम करते हुए पड़े रहते थे। हम लोग बिना मज़दूरी के क़ैदी थे अर्थात् हमें सादी सज़ा मिली थी—हम से मज़दूरी नहीं कराई जाती

थी—अतएव हमारी कोठरियां जुदी जुदी थीं। अन्यथा हम भी उन्हीं में ठूंसे जाते। सख़्त सज़ा वाले भारतीय क़ैदी काफ़िरों के ही साथ रक्खे जाते हैं।

इससे हतक होती है कि नहीं, इस विचार को छोड़ दें तो भी इतना कहना काफ़ी है कि यह काम जोखों का है। काफ़िर अधिकांश जङ्गली होते हैं। फिर क़ैदख़ाने में आये हुए काफ़िरों का तो पूँछना ही क्या? ये बड़े नटखट और बहुत गन्दे होते हैं। प्रायः जानवरों की तरह रहते हैं। एक एक कोठरी में ५०–६० आदमी तक ठूँसे जाते हैं। कभी तो वे शोर-गुल मचाते और कभी लड़ते-भिड़ते भी हैं। ऐसी स्थिति में बेचारे हिन्दुस्तानियों की क्या दुर्दशा होती होगी, पाठक सहज ही इसका अनुमान कर सकते हैं।

अन्य भारतीय क़ैदी।

सारे क़ैदख़ाने में, हमें छोड़ कर, दो ही चार और हिन्दुस्तानी क़ैदी थे। उन्हें काफ़िरों के साथ कोठरी में बन्द होना पड़ता था। तथापि मैंने देखा कि वे प्रसन्न रहते थे, और जब वे बाहर थे अर्थात् क़ैदख़ाने में न थे तब से उनकी तबियत अब बहुत अच्छी थी। उन्होंने प्रधान जेलर की कृपा प्राप्त कर ली थी। वे काम करने में भी तेज़ और होशियार थे। अतएव उन से जेल के अन्दर ही काम लिया जाता था। सो भी 'स्टोर' की मशीनें इत्यादि की देख-रेख तथा ऐसे ही काम जो न तो उन्हें अखरते ही थे और न मैले ही थे। वे हमारे भी बड़े सहायक हो गये थे।

रहने का स्थान।

हमें एक कोठरी सौंपी गई। उसमें १३ आदमियों के रहने की जगह थी। उन कोठरियों पर लिखा था—"काले क़र्ज़दार

क़ैदी।" शायद इन कोठरियों में दीवानी मामलों में सज़ा पाये हुए क़ैदी रक्खे जाते होंगे। उनमें प्रकाश और हवा के लिए दो छोटी सी खिड़कियां थीं जिनमें लोहे के मज़बूत सींकचे लगे हुए थे। कोठरी में जितनी हवा आती थी, मेरे ख़याल में, काफ़ी न थी। कोठरी की दीवारों पर टीन जड़ा हुआ था। इन में आधे आधे इञ्च के तीन सूराख़ थे, जिनमें कांच जड़े हुए थे। जेलर उनमें छिपे छिपे ताक कर देखा करते कि क़ैदी क्या करते हैं। हमारी कोठरी से लगी हुई जो कोठरी थी उसमें काफ़िर क़ैदी थे। उनके संग काफ़िर, चीनी और 'केपब्लोय' गवाह थे। वे सब एक संग इस लिए क़ैदखाने में रक्खे गये थे कि कहीं भाग न जांय।

हम सब के दिन में घूमने फिरने के लिए एक छोटी सी गली या बरामदा था। उसके आस पास दीवार थी। गली इतनी तंग थी कि उसमें घूमना-फिरना कठिन सा था। सीमा प्रान्त के क़ैदियों के लिए तो यह नियम था कि वे बिना इजाज़त गली के बाहर न जांय। स्नान तथा पाख़ाने की जगह उसी बरामदे में थी। स्नान के लिए पत्थर के दो बड़े हौज़ थे और नहाने के लिए दो फ़व्वारे, दो टट्टियां और दोपेशाबख़ाने। उन में पर्दे का कोई प्रबन्ध नहीं था। जेल के क़ानून में भी यह नियम था कि पाख़ाने ऐसे होने चाहिए कि जिन में क़ैदी अलग न रह सकें। अतएव दो तीन क़ैदियों को एक ही क़तार में पाख़ाने के लिए बैठना पड़ता था। स्नान-घर का भी यही हाल था। पेशाबख़ाना तो खुली जगह में ही था। यह सब हमको पहिले पहल असह्य मालूम होता था। कितनों ही को तो इससे बड़ी घिन और तकलीफ़ होती थी। तथापि गहरा विचार करने पर यह जान पड़ता है कि जेलख़ाने में ऐसे

काम ख़ानगी तौर पर नहीं किये जा सकते और ज़ाहिरा तौर पर करने में कोई ख़ास दोष नहीं। अतएव धीरज रख कर ऐसी आदत डालने की ज़रूरत है। और इससे घबड़ाने अथवा खिन करने या ऊब उठने की आवश्यकता नहीं।

कोठरी के अन्दर, सोने के लिए, तीन इञ्च ऊँचे पाये वाली लकड़ी के तख़्तों की चौकियां थीं। हर आदमी को पीछे से कम्बल और एक छोटा सा तकिया तथा बिछौने के लिए एक चटाई दी गई थी। कभी कभी तीन कम्बल भी मिल जाते थे। परन्तु यह मेहरबानी के तौर पर। ऐसे कड़े बिछौने से कितने ही लोग घबड़ाते देखे जाते थे। साधारणतः जिसे मुलायम सेज पर सोने की आदत हो, उसे ऐसा खुरदुरा कड़ा बिछौना खलता है। वैद्यकशास्त्र के नियम के अनुसार कड़ा बिछौना ही अच्छा समझा जाता है। अतएव यदि घर में भी हमें कड़े बिछौने ही पर सोने की आदत हो तो जेल के बिछौने से तकलीफ़ नहीं होती। कोठरियों में हमेशा एक घड़ा पानी और रात में पेशाब करने के लिए कुछ पानी अलग दिया जाता था। क्योंकि रात में कोई क़ैदी बाहर नहीं निकल सकता। हरेक आदमी को आवश्यकता के अनुसार थोड़ा सा साबुन, एक गज़ी की तौलिया तथा एक लकड़ी का चमचा भी दिया गया था।

सफ़ाई।

जेलख़ाने में सफ़ाई बहुत अच्छी होती है। कोठरी की फ़र्श हमेशा जन्तुनाशक (Phenyl) पानी से धोई जाती थी। इन में हर रोज़ चूना पोता जाता था जिस से वे हमेशा नई मालूम हों। हम्माम और पाख़ाने भी नित्य साबुन तथा जन्तुनाशक पानी (Phenyl) से साफ़ किये जाते थे। सफ़ाई का

तो मुझे स्वयं शौक़ है। जब कई सत्याग्रही क़ैदी बाद में बढ़ गये तब मैं स्वयं जन्तु-नाशक पानी (Phenyl) से पाख़ाना धोता। पाख़ाना उठाने के लिए हमेशा नौ बजे कितने ही चीनी क़ैदी आते थे। उसके बाद यदि दिन में पाख़ाना साफ़ रखना होता तो अपने ही हाथों से सफ़ाई करनी पड़ती थी। पत्थर की चौकियां हमेशा रेती और पानी से धोई जाती हैं। अड़चन सिर्फ़ एक बात की है कि क़ैदियों में कम्बल और तकिये बदल जाने की बहुत सम्भावना रहती है। रोज़ धूप में कम्बल सुखाये जाने का नियम है। पर शायद ही इसका पालन किया जाता हो। जेल की गलियां हमेशा दो बार साफ़ की जाती थीं।

कुछ नियम।

जेल के कितने ही नियम सब लोगों के जानने योग्य हैं। शाम को साढ़े पांच बजे सब क़ैदी बन्द कर दिये जाते हैं। आठ बजे रात तक वे पढ़ और बात चीत कर सकते हैं। आठ बजे के बाद सब को सो जाना पड़ता है। यदि नींद न आती हो तो भी चुपचाप पड़े रहना चाहिए। आठ बजे के बाद बीच २ में बात करना जेल के नियम को भङ्ग करना है। काफ़िर क़ैदी इस नियम का यथोचित पालन नहीं करते। अतएव रात के पहरेदार उन्हें चुप करने के लिए "ठुला, ठुला" कह कर दीवारों पर लाठी ठोंका करते हैं। क़ैदी को बीड़ी पीने की सख़्त मुमानियत है। इस नियम की पाबन्दी बड़ी सरगर्मी से की जाती है। पर मैं देखता था कि बीड़ी पीने के आदी क़ैदी दबे-छुपे इस नियम का उल्लंघन करते थे। सबेरे साढ़े पांच बजे उठने का घण्टा बजता है। उस समय प्रत्येक क़ैदी को उठ कर हाथ मुँह धो लेना और अपना बिछौना समेट

लेना चाहिए। सवेरे छः बजे कोठरी का दरवाज़ा खुलता है। इस समय प्रत्येक क़ैदी समेटे हुए बिछौने के पास अदब के साथ खड़ा मिलना चाहिए। रक्षक आकर प्रत्येक क़ैदी को गिन जाता है। इसी तरह कोठरी बन्द करते समय हर एक क़ैदी को बिछौने के पास खड़ा रहना चाहिए। सिवा क़ैदख़ाने की और कहीं की कोई चीज़ क़ैदी के पास न होनी चाहिए। कपड़ों के सिवा और कोई वस्तु गवर्नर की आज्ञा बिना पास रखने की मनाही है। हर एक क़ैदी के ऊपरी कपड़े के एक बटन पर एक छोटी सी थैली सिली रहती है। उसमें क़ैदी का टिकट रहता है। टिकट पर उसका नम्बर, सज़ा का ब्योरा, उसका नाम, इत्यादि बातें लिखी रहती हैं। साधारण नियमों के अनुसार दिन को कोठरी में रहने की आज्ञा नहीं है। जिन्हें काम पर जाना होता है वे तो कोठरी में रह ही नहीं सकते। परन्तु बेकार क़ैदी भी नहीं रह सकते। उन्हें गलियों में रहना पड़ता है। हमारे सुभीते के लिए गवर्नर ने एक मेज़ और दो बेंचें कोठरी में रखने की इजाज़त दी थी। उनसे हमें बड़ा आराम मिला।

नियम है कि दो महीने की सजा वाले क़ैदी के बाल और मूंछ काट डाली जाय। हिन्दुस्तानियों पर इसका व्यवहार सख़्ती से नहीं किया जाता। जो इनकार करता है, उसकी मूंछें रहने दी जाती हैं। इस विषय की एक दिल्लगी सुनिए। मैं तो स्वयं जानता ही था कि क़ैदियों के बाल कटवाये जाते हैं। और यह भी ख़बर थी कि ये बाल क़ैदियों के आराम के लिए कटाये जाते हैं। मैं इस नियम का क़ायल हूं। मुझे यह नियम आवश्यक मालूम होता है। जेलख़ाने में कंघियां इत्यादि बाल साफ़ रखने की चीज़ें तो मिलती नहीं, और बाल अगर

साफ़ न रक्खे जांय तो फोड़े-फुन्सी होने का डर रहता है। फिर गरमी के दिनों में तो बाल असह्य हो जाते हैं। क़ैदियों को आईना मिलता नहीं। मूँछ मैली या गन्दी होने की सम्भावना बनी रहती है। खाते समय रूमाल भी नहीं होता। लकड़ी के चमचे से खाने में दिक़्त पड़ती है। लम्बी मूँछ हो तो जूठन मूँछ में ही चिपकी रहती है। मैं चाहता था कि क़ैद का पूरा अनुभव किया जाय। इस लिए मैंने मुख्य दारोग़ा से कहा कि मेरे बाल और मूँछ कटवा दीजिए। उसने कहा, गवर्नर ने सख़्त मुमानियत की है। मैंने कहा— मुझे मालूम है कि गवर्नर मुझे बाध्य नहीं कर सकते, परन्तु मैं तो अपनी राज़ी से बाल कटवाना चाहता हूं। उसने कहा, गवर्नर से अर्ज़ करो। दूसरे दिन गवर्नर ने आज्ञा तो दे दी, पर कहा कि, दो महीने में अभी तो तुम्हारे दोही दिन बीते हैं, इतने ही में तुम्हारे बाल कटवाने का अधिकार मुझे नहीं। मैं ने कहा—यह मैं जानता हूं, परन्तु अपनी आराम के लिए मैं अपनी इच्छा से उन्हें कटवाना चाहता हूं। इस पर उसने हंस कर बात टाल दी। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि गवर्नर को बहुत शक और डर हो गया था कि मेरी इस बात में कोई रहस्य तो नहीं है! उसके मत्थे मढ़ कर कहीं ज़बरदस्ती बाल मूँछ काट डालने का वावेला तो मैं न मचाऊं? परन्तु मैं बार बार कहता ही रहा। मैंने यहां तक कह दिया कि, मैं लिखे देता हूं कि मैं अपनी इच्छा से बाल कटवाता हूं। तब कहीं गवर्नर का शक दूर हुआ और उसने दारोग़ा को ज़बानी हुक्म दिया कि, इन्हें कैंची दे दो। मेरे साथी क़ैदी मिस्टर पी० के० नायडू बाल बनाना जानते थे। मैं ख़ुद भी थोड़ा बहुत जानता हूं। मुझे बाल और मूँछ काटते देख तथा उस का कारण समझ कर औरों ने भी वैसा ही किया। कितनों

ने सिर्फ़ बाल ही कटाये। मिस्टर नायडू तथा मैं दोनों, कोई दो घण्टे हमेशा हिन्दुस्तानी क़ैदियों के बाल काटने में ख़र्च किया करते। मेरी राय में इससे आराम और सुभीता दोनों हैं। इससे क़ैदी देखने में भी भले मालूम होते थे। जेल में अस्तुरा रखने की सख़्त मनाही है। सिर्फ़ कैंची ही रख सकते हैं।

देख-भाल।

क़ैदियों की देखभाल करने के लिए जुदे जुदे कर्मचारी आते हैं। उनके आते समय प्रत्येक क़ैदी को एक क़तार में हो जाना चाहिए। कर्म्मचारी के आते ही टोपी उतार कर सलाम करना चाहिए। सब क़ैदियों के पास अंगरेज़ी टोपियां थीं। अतएव उनके उतारने में कोई दिक़्क़त न पड़ती थी। और टोपी उतारना बाक़ायदा ही नहीं बल्कि उचित भी था। जब कोई कर्म्मचारी आता, एक क़तार में होने का हुक्म "फाल इन" इन शब्दों में दिया जाता। "फाल इन" शब्द हमारे कानों को बहुत परिचित हो गये थे। इन शब्दों का अर्थ यह है कि, एक क़तार में होकर ध्यानपूर्वक खड़े हो जाओ। दिन में चार पाँच बार इस तरह होता। एक कर्म्म-चारी, जो नायब-दारोग़ा, कहलाता था, ज़रा अकड़बाज़ था। इस लिए उसका नाम हिन्दुस्तानी क़ैदियों ने "जनरल स्मट्स" रख दिया था। सवेरे वह बहुत तड़के कितने ही बार सब से पहले आ जाता और फिर शाम को भी चक्कर लगा जाता। साढ़े नौ बजे डाक्टर आता। वह बहुत भला और दयालु जान पड़ता था। हमेशा बड़े प्रेमपूर्वक समाचार पूँछता। जेल के नियमों के अनुसार प्रत्येक क़ैदी को पहिले

दिन खुलेआम नंगा होकर अपना शरीर डाक्टर को दिखलाना पड़ता है। परन्तु डाक्टर ने हम पर यह नियम नहीं चलाया और जब हिन्दुस्तानी क़ैदी बहुत हो गये तब उन्होंने कहा कि अगर किसी को खुजली इत्यादि की बीमारी हो जाय तो हम से कहना ताकि हम अकेले में ले जाकर उसकी देख-भाल कर लेंगे। साढ़े दस या ग्यारह बजे गवर्नर तथा मुख्य दारोग़ा आते। गवर्नर बड़ा मज़बूत, बड़ा न्यायशील, और बड़ा शान्तस्वभाव था। उस का हमेशा एक ही सवाल होता, तुम सब अच्छी तरह तो हो? तुम्हें कोई चीज़ दरकार है? तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है? और जो कोई किसी चीज़ को चाहता या शिकायत करता तो वह बड़े ध्यान से सुनता। यथासम्भव वह उनकी इच्छा भी पूरी करता। जो शिकायत उसे ठीक जंचती उसका भी काफ़ी इन्तज़ाम करता। कभी कभी डिप्टी-गवर्नर भी आता। वह भी भला आदमी था। परन्तु सब से भला, सुशील और मिलनसार तो हमारा ख़ास मुख्य-दारोग़ा ही था। वह स्वयं बड़ा धार्मिक था। वह हम से बड़ा अच्छा और सभ्य व्यवहार करता। अतएव हर एक क़ैदी मुक्तकण्ठ से उसका गुण-गान करता था। क़ैदियों को उनके अधिकारियों से लाभ उठाने देने का यह बड़ा ध्यान रखता। क़ैदियों के छोटे छोटे क़सूरों को वह माफ़ कर देता। हम से तो वह यह समझ कर बहुत स्नेह रखता था कि हम सब निरपराध हैं। अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए वह कितनी ही बार हमारे पास आकर बातचीत किया करता।

हिन्दुस्तानी क़ैदियों की वृद्धि।

मैं कह चुका हूं कि पहले हमीं पांच आदमी सत्याग्रही

क़ैदी थे। १४ जनवरी, मंगलवार को मिस्टर थम्बी नायडू जो चीफ़ पिकेट थे, तथा चायनीज़ एसोसियेशन के अध्यक्ष मिस्टर क्वीन जेल में आये। उन्हें देखकर सब खुश हुए। १८ जनवरी को और १४ आदमी आये। उनमें समुन्दर ख़ां भी थे। उन्हें दो महीने क़ैद की सज़ा मिली थी। शेष १३ में मदरासी, कानमीया और गुजराती हिन्दू थे। वे सब बिना लाइसेन्स फेरी का पेशा करने के अपराध में गिरफ़ार हुए थे। उन पर दो पौंड जुरमाना हुआ था। नियम था कि जो दो पौंड न दाख़िल करे वह १४ दिन जेल भोगे। उन्होंने साहस करके जुरमाना न दिया और क़ैदख़ाने में आगये! २१ जनवरी मंगलवार को ७६ आदमी और भी आये। उन्हीं में नवाब ख़ां भी थे, जिनकी सज़ा दो महीने की थी। बाक़ी दो पौंड जुरमाना या १४ दिन क़ैद की सज़ा वाले थे। इस दल में कितने ही गुजराती हिन्दू थे। कानमीया और मदरासी भी थे। २२ जनवरी, बुधवार को ३५ आदमी फिर आ दाख़िल हुए। २३ को ३, २४ को १, २५ को २, २८ को ६ और उसी दिन शाम को ४ आदमी और भी आये। २६ को फिर ४ कानमीये आये। अर्थात् २६ जनवरी तक सब मिलाकर १५५ सत्याग्रही क़ैदी वहां हो गये थे। ३० जनवरी गुरुवार को मुझे प्रिटोरिया (ट्रांसवाल) ले गये थे। पर मुझे याद है कि उस दिन भी ५—६ क़ैदी आये थे।

भोजन।

भोजन का सवाल ऐसा है कि इस पर कितने ही आदमियों को कितनी ही बार विचार करना चाहिए, परन्तु क़ैदियों के लिए तो उस पर और भी अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है। उनका तो जियादा दारोमदार अच्छे भोजन पर

ही है। भोजन के सम्बन्ध में यह नियम है कि जेल की तरफ़ से जो कुछ मिले वही खांय, बाहर का नहीं। सोल्जरों को जो भोजन मिलता है वही खाना पड़ता है। पर क़ैदियों और सोल्जरों में बहुत अन्तर है। सोल्जरों के लिए, उनके भाई भतीजे और चीज़ें भेज सकते हैं और वे उन्हें ग्रहण कर सकते हैं, पर क़ैदी तो और चीज़ें लेही नहीं सकता, उसे तो मनाही है। भोजन की तकलीफ़ क़ैदख़ाने की बड़ी भारी निशानी है। बातचीत में अक्सर देखा जाता है कि जेल के अधिकारी कहते हैं कि क़ैद में स्वाद का क्या काम? लज़ीज़ चीज़ें जेल में नहीं दी जातीं। जब जेल के डाक्टर के साथ बातचीत करने का मौक़ा मुझे मिला, मैंने उन से कहा कि रोटी के साथ चा अथवा घी या और चीज़ मिलनी चाहिए तब उस ने कहा—"यह तो तुम स्वाद के लिए चाहते हो, जेल में यह न मिलेगा।"

अब आप जेल के भोजन का वर्णन सुनिए। जेल के नियम के अनुसार हिन्दुस्तानी क़ैदी को पहिले हफ़्ते में नीचे लिखी चीज़ें दी जाती हैं—

सवेरे मकई के बारह औंस आटे की लपसी (पू पू) बिना घी शकर के।

दोपहर को चार औंस चावल और एक औंस घी।

शाम को चार दिन १२ औंस मकई के आटे की लपसी (पू पू), तीन दिन बारह औंस भुने हुए बाल (बीन्स) और नमक।

काफ़िर को जो भोजन दिया जाता है उसी के आधारों पर यह तजवीज़ की गई है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही है कि शाम

को काफ़िरों को गर्द मिली हुई मकई और चरबी दी जाती है किन्तु हिन्दुस्तानियों को इसके बदले चावल मिलता है।

दूसरे सप्ताह में और उसके बाद हमेशा मकई के आटे के साथ दो दिन भुने आलू और दो दिन कोई दूसरा शाक, जैसे कोहड़ा इत्यादि, दिया जाता है। जो मांसभोजी हैं उन्हें दूसरे हफ़्ते से हर शनिवार को तरकारी के साथ मांस भी मिलता है।

जो क़ैदी पहिले आये थे उन्हों ने निश्चय कर लिया था कि हम सरकार से किसी प्रकार की रियायत करने की प्रार्थना नहीं करेंगे। जैसा खाना मिलेगा उसी से काम चलायेंगे। सच पूछिए तो पूर्वोक्त भोजन हिन्दुस्तानियों के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। काफ़िरों का तो मकई रोज़ का खाना है। अतएव वह उन्हें बहुत मुआफ़िक़ हो सकता है और उसे खाकर वे क़ैदख़ाने में भी हृष्ट पुष्ट रह सकते हैं। परन्तु भारत-वासियों के लिए तो चावल को छोड़ कर कोई भी चीज़ मुआ-फ़िक़ नहीं समझी जाती। बिरला ही हिन्दुस्तानी मकई का आटा खाता होगा। ख़ाली मकई की बाल यानी बीन्स खाने की तो आदत हमें भी नहीं और तरकारी वग़ैरह तो जिस ढंग से वे लोग बनाते हैं वह हिन्दुस्तानियों को पसन्द नहीं। वे तरकारी न तो साफ़ करते हैं न उसमें मसाला इत्यादि ही छोड़ते हैं। बल्कि गोरों के लिए जो तरकारी बनती है प्रायः उसके छिलके की तरकारी काफ़िरों के लिए बनाई जाती है। नमक के अतिरिक्त उसमें और कोई मसाले की चीज़ नहीं डाली जाती। शकर की तो बात ही जाने दीजिए। अतएव भोजन की बात सबको खलने लगी। पर हमने निश्चय किया था कि हम सत्याग्रही जेल के अधिकारियों के हाथ न जोड़ेंगे। अत-

एव इस विषय में भी हमने कोई मिहरबानी न चाही और पूर्वोक्त भोजन पर ही संतोष किया।

गवर्नर ने हम से पूछताछ की तो उस के जवाब में हमने कहा कि, "भोजन अच्छा नहीं। पर सरकार से हम कोई रियायत—कोई मिहरबानी—नहीं चाहते। सरकार ही यदि भोजन में कुछ सुधार करे तो ठीक है, नहीं तो इस नियम के अनुसार जो खाना मिलता है हम वही खायेंगे।"

पर यह निश्चय अधिक दिनों तक नहीं टिका। और दूसरे लोग जब आये तब हम सब ने सोचा कि इन लोगों को भी भोजन के दुःख में शरीक करना उचित नहीं। उन्हें जेल में आना पड़ा यही बहुत है। और उनके लिए सरकार से अलग रियायत चाहना उचित है, इस ख़याल से, गवर्नर से, इस विषय की बात-चीत छेड़ दी। गवर्नर से कहा कि—हम जैसा हो वैसा भोजन ग्रहण कर सकते हैं। पर पीछे से आये हुए लोग वैसा नहीं कर सकते। गवर्नर ने विचार कर के जवाब दिया कि—सिर्फ धर्म के लिहाज़ से अगर अलग रसोई करना चाहो तो कर सकते हो, परन्तु भोजन तो जो मिलता है वही मिलेगा। दूसरी तरह का खाना देना मेरे क़ाबू का नहीं।

इतने में ऊपर कहे अनुसार १४ हिन्दुस्तानी क़ैदी और आ गये। उन में से कितनों ही ने तो 'पू पू' खाने से इनकार कर दिया और भूके ही दिन काटने लगे। तब मैंने जेल के नियम पढ़े। मुझे ज्ञात हुआ कि इस विषय की प्रार्थना (Director of Prisons) से की जाती है। तब गवर्नर मंजूरी ले कर नीचे लिखे मुताबिक़ दरख़्वास्त भेजी गई :—

"हम नीचे दस्तख़त करनेवाले क़ैदी अर्ज़ करते हैं कि हम सब २१ एशियाटिक क़ैदी हैं। उन में १८ हिन्दुस्तानी

और बाक़ी चीनी हैं। हिन्दुस्तानियों को भोजन में सबेरे 'पू पू' (लपसी) मिलता है और बाक़ी लोगों को चावल और घी, तथा तीन बार बीन्स और चार बार 'पू पू'। शनिवार के दिन आलू और रविवार को सब्ज़ी दी जाती है। धर्म के लिहाज़ से हम कोई मांस नहीं खा सकते। कितनों ही को तो मांस खाना धर्म-विरुद्ध है। और कितने ही हलाल मांस न होने के कारण नहीं खा सकते। चीनियों को चावल के बदले मकई दी जाती है। सर्व अर्ज़दारों में अधिकांश को यूरोपियन ढंग के भोजन की आदत है और वे रोटी तथा आटे की अन्य चीज़ें खाते हैं। हम में से कितनों ही को 'पू पू' खाने की बिल्कुल टेव नहीं। इससे उनको अजीर्ण हो जाता है। हम में से सात आदमियों ने तो सबेरे का भोजन बिल्कुल किया ही नहीं। सिर्फ़ किसी समय कुछ चीनी क़ैदियों ने दया कर के अपनी रोटी में से दो एक टुकड़े दे दिये थे वही उन्होंने खाये थे। यह हाल हमने गवर्नर से कहा। उन्होंने कहा कि चीनियों के पास से जो रोटियां लीं यह अपराध समझा जाता है। हमारी राय में पूर्वोक्त भोजन हमारे लिए मुज़िर हैं। लिहाज़ा हम अर्ज़ करते हैं कि 'पू पू' बन्द कर के हमें यूरोपियन नियम के अनुसार भोजन मिलना चाहिए। अथवा ऐसा भोजन दिया जाय जो हमें हानिकर न हो। हमें जो खाना दिया जाय वह हमारी प्रकृति और रीति-रिवाज के अनुसार होना चाहिए।

"काम बहुत जल्दी का है, अशद ज़रूरी है। अतएव अर्ज़दार अर्ज़ करते हैं कि इसका उत्तर हमें तार के ज़रिये दिया जाय।"

इस अर्ज़ी पर हम २१ आदमियों ने दस्तख़त किये थे।

दस्तख़त हो चुकने के बाद अर्ज़ी भेजी ही जा रही थी कि ७६ भारतीय क़ैदी और आ पहुंचे। उन्हें भी 'पू पू' से नफ़रत थी। अतएव दरख़्वास्त के नीचे इतना मज़मून और बढ़ाया गया कि, "७६ आदमी और आये हैं। पूर्वोक्त भोजन पर उन्हें भी एतराज़ है। अतएव शीघ्रही प्रबन्ध होना चाहिए।" मैंने गवर्नर से निवेदन किया कि इस दरख़्वास्त को तार से भेज दीजिए। तब उसने टेलीफ़ोनके द्वारा डिरेक्टर से आज्ञा लेकर 'पू पू' के बदले चार औंस रोटी का हुक्म दिया। इस से लोग बड़े खुश हुए। तब २२ तारीख़ से सबेरे हमें चार औंस रोटी और शाम को भी 'पू पू' के दिन रोटी दी जाने लगी। शाम को आठ औंस रोटी की आज्ञा थी। यह सिलसिला फिर भी दूसरा हुक्म होने तक, क़ायम ही रहा। इसके लिए गवर्नर ने एक कमिटी नियुक्त की थी और उसमें आटा, घी, चावल तथा दाल दिये जाने की चर्चा चल रही थी। इतने ही में हम छोड़ दिये गये। अतएव आगे कोई बात न हुई।

पहिले, जब हम आठ ही आदमी थे, हम कोई रसोई न बनाते थे। भात अच्छा नहीं बनता था और तरकारी की बारी के दिन तरकारी तो बड़ी ही बुरी तरह पकाई जाती थी। इससे हमने रसोई पकाने की भी आज्ञा प्राप्त की। पहिले दिन मिस्टर कडवा रसोई बनाने गये। उसके बाद मिस्टर थम्बी नाइडू तथा मिस्टर जीवन ये दो आदमी खाना पकाने जाते। आख़ीर के दिनों में तो इन दोनों सज्जनों को कोई दो सौ आदमियों की रसोई तैयार करनी पड़ी थी। भोजन एक बार बनाया जाता था। हफ़्ते में दो बार सब्ज़ी की बारी आती, तब रोज़ दोनों बार पकाना पड़ता था। मिस्टर थम्बी

नायडू बहुत मिहनत करते थे। सबको परोसने या बांटने का काम मेरे ज़िम्मे था।

पूर्वोक्त दरख़्वास्त में यह नहीं कहा गया था कि ख़ास हमारे ही लिए अलग भोजन का प्रबन्ध किया जाय, बल्कि हिन्दुस्तानी मात्र के लिए फेरफार करने की सूचना उसमें थी। गवर्नर से भी यही बात चीत हुई थी। उसने मंजूर भी किया। अब भी आशा की जासकती है कि जेल में हिन्दुस्तानी क़ैदियों के भोजन में सुधार हो सकता है। इसके सिवा तीनों चीनियों को चावल के बदले हमसे भिन्न भोजन मिलता था। इससे और भी असन्तोष फैलता था और यह ध्वनित होता था कि चीनी हमसे हलके (नीचे) समझे जाते हैं। अतएव उनकी तरफ़ से मैंने गवर्नर तथा मिस्टर प्लेफर्ड से प्रार्थना की। और अन्त में आज्ञा मिली कि चीनियों को भी हिन्दुस्तानियों की तरह भोजन दिया जाय।

योरोपियनों को जिस तरह का भोजन मिलता था, अब वह सुनिए। उन लोगों को सबेरे नाश्ता के लिए आठ औंस 'पू पू' और रोटी मिलती है। दोपहर के भोजन में भी हमेशा रोटी और शुरुवा अथवा रोटी और मांस तथा आलू, अथवा सब्ज़ी और शाम को रोज़ रोटी तथा 'पू पू'। अर्थात् योरोपियनों को तीन बार रोटी मिलती है इसलिए वे 'पू पू' की विशेष परवाह नहीं करते; मिले तो भला न मिले तो भला। इसके सिवा उन्हें जो शुरुवा और गोश्त हमेशा मिलता था सो घाते में और कितनी ही बार उन्हें चाय या कोको भी दिया जाता था। इससे यह जाना जाता है कि काफ़िरों को उनके मुआफ़िक़ और योरोपियनों को उनके मुआफ़िक़ भोजन दिया जाता था। हिन्दुस्तानी बेचारे अधर में ही लटकते

रहते। उन्हें अपने ढंग का भोजन कभी नसीब नहीं हुआ। योरोपियनों का भोजन उन्हें दिया जाय तो गोरों को लाज आती थी। और वे इस बात का विचार ही क्यों करने लगे कि हिन्दुस्तानियों को उनका कौन सा खाना दिया जाय। अतएव वे काफ़िरों की सतर में ढकेल दिये गये।

यह अन्धेर आज तक जारी है। कोई आंख उठा कर उस पर निगाह नहीं डालता। इसे मैं अपने सत्याग्रह की कमज़ोरी समझता हूं। क्योंकि एक ओर जब कुछ हिन्दुस्तानी क़ैदी तो चोरी से—छिप कर—जैसा चाहिए मँगा कर खाना खाते हैं, और इसके लिए उन्हें कुछ हानि भी नहीं उठानी पड़ती, तब दूसरी ओर कुछ भारतीय क़ैदी जो मिलता है वही खाना खाते हैं और अपने निज के सिर पर आई विपदा की कहानी कहने में शरमाते हैं। इससे बाहरवाले अंधेरे में ही टटोलते हैं। यदि हम सच्चाई से काम लें और अन्याय का घात करते रहें तो ऐसी तकलीफ़ उठानी ही न पड़े। स्वार्थ को छोड़ कर परमार्थ की ओर नज़र रखने से तो दुःख की दवा फ़ौरन ही मिलती है।

परन्तु जिस तरह इस प्रकार के दुःख की दवा करना आवश्यक है उसी तरह एक दूसरा विचार करना भी परमावश्यक है। क़ैदी होने से कितने ही सङ्कट सहने पड़ते हैं। यदि कष्ट न हो तो फिर क़ैदख़ाना ही किस काम का? जो अपने मन को दबा कर रख सकते हैं वही कष्ट को सुख समझ कर जेल में आनन्द से रह सकते हैं। अतएव क़ैदी इस बात को नहीं भूलता कि जेलख़ाने में कष्ट मिलता है। और उसे औरों के लिए भी यह न भूल जाना चाहिए। इसके बिना हमें अपनी रस्मोरिवाज इस तरह के डाल लेना चाहिए

कि उसमें अधिक रद्दोबदल करने की ज़रूरत न पड़े। "जैसा देश वैसा वेश" यह कहावत प्रसिद्ध ही है। दक्षिणी अफ्रिका में रह कर हमें ऐसी ही आदत डालनी चाहिए जिस से हमें यहाँ का अन्न-जल मुआफ़िक़ आ जाय। 'पू पू' गेहूं के सदृश अच्छा, सादा और सीधा भोजन है। यह भी नहीं कह सकते कि उस में स्वाद नहीं। कभी 'पू पू' गेहूं से भी बढ़-चढ़ जाता है। मेरी राय में तो जिस देश में हम रहते हों उस देश की प्रतिष्ठा की दृष्टि से—आदर के लिहाज़ से—वहां की ज़मीन में जो अन्न पैदा होता हो वह यदि ख़राब न हो तो अपने काम में लाना उचित है। कितने ही गोरों को 'पू पू' पसन्द है और वे हमेशा सबेरे उसी को खाते हैं। 'पू पू' के साथ दूध, शक्कर अथवा घी खाने से वह स्वादिष्ट बन जाता है। इन कारणों से, तथा हमें अभी फिर जेल जाना पड़ेगा, इस ख़्याल से, हम को चाहिए कि हम 'पू पू' खाने की आदत डालें। प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए यह अभ्यास अनिवार्य होना चाहिए। यदि हम ने ऐसा किया तो फिर जब कभी हमें 'पू पू' से काम पड़ेगा, तब वह हमें खलेगा नहीं। अपने देश के लिए हमें अपनी कितनी ही आदतें छोड़नी पड़ेंगी। इसके बिना गुज़र नहीं। जो जो जातियां आगे बढ़ी हैं उन्होंने, जो बातें हानिकर नहीं हैं अथवा विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनको स्वीकार कर लिया है। मुक्ति-फ़ौज वालों को देखिए, जिस देश में वे जाते हैं उस देश के रीति-रिवाज, पोशाक-पहनाव इत्यादि को, वे अगर बुरे न हों, अपनाकर वहां के लोगों का मन हरण कर लेते हैं।

रोगी।

हम डेढ़ सौ क़ैदियों में एक भी बीमार न होता तो

बड़े ताज्जुब की बात थी। मिस्टर समुन्दर ख़ां पहिले रोगी थे। वे तो जब जेल में आये तभी बीमार थे, सो अस्पताल पहुंचाये गये। मिस्टर कडवा को सन्धिवात की बीमारी थी। कितने ही दिन तो जेल में ही मरहम इत्यादि दवायें डाक्टर से लीं। परन्तु पीछे से वे भी अस्पताल गये। दूसरे दो क़ैदी चक्कर (Giddiness) आने की बीमारी से तङ्ग थे। वे भी अस्पताल पहुंचाये गये। वहां हवा बड़ी गरम थी। क़ैदियों को धूप में रहना पड़ता था इस से किसी किसी को चक्कर आ जाया करता। उनकी सेवा-शुश्रूषा यथेष्ट की जाती थी। अन्तिम दिनों में मिस्टर नवाब ख़ां भी बीमार होगये। डाक्टर ने उन्हें दूध इत्यादि देने की आज्ञा दी। तब उनकी तबीयत ज़रा सँभली। तथापि समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि हम सत्याग्रही क़ैदियों का स्वास्थ्य अच्छा रहा।

स्थान की कमी।

मैं पहिले ही कह चुका हूं कि जिस कोठरी में हम लोग रक्खे गये थे। उसमें सिर्फ ५१ आदमियों के लिए जगह थी। बरामदे भी उतने ही आदमियों के लिए थे। परन्तु जब ५१ के बजाय १५१ से भी ज़्यादा क़ैदी हो गये तब तो हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। गवर्नर ने बाहर डेरे लगवा दिये, बहुत से क़ैदी उनमें रहने लगे। आख़ीर दिनों में १०० क़ैदी बाहर सोने जाते थे। पर वे सवेरे फिर आ जाते, इस से बरामदा भर जाता। उसमें जगह बिल्कुल न रहती। उतनी ही जगह में क़ैदी बड़ी तकलीफ़ से रहते थे। इसके सिवा अपनी अपनी टेव के अनुसार लोग इधर उधर थूका भी करते। इस से गन्दगी फैलती और बीमारी पैदा होने का डर रहता। सौभाग्य से मेरे समझाने-बुझाने पर लोग मान भी जाते थे।

वे बरामदा साफ़ करने में भी मदद देते थे। बरामदे तथा पाखाने की सफ़ाई पर बहुत ध्यान दिया जाता था, यही कारण है कि लोग बीमार न हुए। इतने क़ैदियों को इतनी तङ्ग जगह में रक्खा, यह सरकार का दोष था। इसे सब स्वीकार करेंगे। जब कि जगह तङ्ग थी तब सरकार का कर्तव्य था कि इतने क़ैदी वहां न भेजती। जो यह आन्दोलन अधिक दिनों तक और अधिक ज़ोरशोर से चलता तो सरकार कभी ज़ियादा क़ैदियों का समावेश न कर सकती।

पठन-पाठन।

मैं पहिले ही कह आया हूं कि गवर्नर ने हमें जेल में भेज देने की आज्ञा दे दी थी। साथ ही दावात-क़लम भी मिली थी। और जेल से सम्बन्ध रखनेवाली एक लाइब्रेरी भी थी। क़ैदियों को उसमें से पुस्तकें मिलती थीं। वहां से मैंने 'कारलाइल' की पुस्तकें तथा बाइबिल ली थी। एक चीनी दुभाषिया (इंटर प्रेटर) था। उसने पहिले ही से अँगरेज़ी कुरानशरीफ़, 'हक्सले' के भाषण, बार्नस जान्सन और स्काट के जीवन-वृत्तान्त (कारलाइल कृत) तथा बेकन के नीति विषयक निबन्ध नामक पुस्तकें ले रक्खी थीं। मेरे निज की किताबों में से इतनी किताबें मेरे पास थीं—मणीलाल नथुभाई की टीका वाली गीता, तामिल पुस्तकें, मौलवी साहिब की दी हुई उर्दू किताबें, टाल्स्टाय के लेख और रस्किन तथा सुक़रात के लेख। इनमें से बहुत सी पुस्तकें मैंने जेल में प्रथम बार अथवा पुनर्वार पढ़ीं। तामिल का अध्ययन नियम-पूर्वक करता था। सबेरे गीता, और दोपहर को अधिकतर क़ुरानशरीफ़ पढ़ा करता। शाम को मिस्टर फ़ोरटुन को बाइबिल पढ़ाता। मिस्टर फ़ोरटुन चीनी किरस्तान हैं। वे

अंगरेज़ी पढ़ना चाहते थे। अतएव उन्हें बाइबिल के द्वारा मैं अंगरेज़ी पढ़ाता था। यदि पूरे दो महीने जेल में रहना पड़ा होता तो कारलाइल की एक पुस्तक तथा रसकिन की पुस्तकों का भाषान्तर करने की इच्छा थी। हां, मुझे स्वीकार है कि मैं पूर्वोक्त पुस्तकों में व्यस्त रह सकता था। और इस कारण यदि मुझे दो मास और क़ैद की सज़ा मिलती तो मैं हिम्मत न हारता, यही नहीं बल्कि उस अवधि में मैं अपने ज्ञान की बहुत कुछ वृद्धि कर सकता और पूर्णतः सुख चैन से रहता। इसके सिवा मैं यह भी मानता हूं कि जिन्हें अच्छी २ पुस्तकें पढ़ने का शौक़ है वे हर कहीं एकान्त पा सकते हैं। मेरे सिवा क़ैदी भाइयों में पठन-प्रिय थे—मिस्टर सी० एम० पिल्ले, मिस्टर नायडू तथा चीनी सज्जन। दोनों नाइडुओं ने गुजराती पढ़ना आरम्भ किया था। पीछे से कितनी ही गुजराती गानों की पुस्तकें आई थीं। उन्हें बहुत लोग पढ़ा करते थे। पर इसे मैं पढ़ना नहीं कहता।

क़वायद।

जेल में सारे दिन पढ़ा नहीं जा सकता। और अगर यह सम्भव होता भी तो इस से नुक़सान ही होता। अतएव बड़ी मुश्किल से हमने क़वायद और कसरत करने की इजाज़त गवर्नर और दारोग़ा से ली। दारोग़ा बड़ा भला आदमी था। वह ख़ुशी ख़ुशी हमें शाम को क़वायद सिखाता। इससे बड़ा लाभ होता। ज़ियादा दिन अगर क़वायद का सिलसिला जारी रहता तो हम सब को बहुत फ़ायदा होता। परन्तु जब बहुत हिन्दुस्तानी आ गये तो दारोग़ा का काम बढ़ गया और बरामदे में जगह कम हो गई। इन कारणों से क़वायद बन्द हो गई। तथापि मिस्टर नवाब ख़ां साथ थे।

इससे घरेलू ढंग से उनके ज़रिये क़वायद होती रहती। इसके सिवा गवर्नर की परवानगी से हमने सीने की मैशीन चलाने का काम भी आरम्भ किया था। हम क़ैदियों का झोला बनाना सीखते थे। मिस्टर टी० नायडू तथा मिस्टर ईस्टन इस काम में तेज़ थे। अतएव वे जल्दी सीख गये। पर मुझे वैसी सफलता न मिली। मैं पूरा सीखने न पाया था। कि एकबारगी क़ैदी बढ़ गये और काम अधूरा छूट गया। इससे पाठक समझ सकते हैं कि मनुष्य की इच्छा हो तो वह 'जङ्गल में मङ्गल' कर सकता है। इस तरह एक के बाद दूसरा काम तजवीज़ करते रहने से किसी क़ैदी को जेल का समय भारू नहीं मालूम होता। बल्कि वह अपने ज्ञान और शक्ति की वृद्धि कर के वहां से बाहर होता है। कितने ही दृष्टान्त मिले हैं कि क़ैदख़ाने में नेकनीयत आदमियों ने बड़े भारी २ काम कर डाले हैं। 'जान बैनियन' ने क़ैदख़ाने में बड़े कष्ट सहकर संसार में अमर ग्रन्थ—पिलग्रिम्स प्रोग्रेस—की सृष्टि की है। अंगरेज़ बाइबिल के बाद इसे ही प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। मिस्टर तिलक ने बम्बई के नौ महीने की जेल में 'ओरायन' नाम की पुस्तक लिखी। अतएव जेल में, या दूसरी जगह, सुख मिलेगा या दुःख, चंगे रहेंगे या बीमार, इसका निपटारा अधिकांश में हमारे निज के मन पर अवलम्बित है।

भेंट।

जेल म हमसे मिलने कितने ही अंगरेज़ आते। साधारण नियम यह है कि एक महीने के भीतर कोई भी किसी भी क़ैदी से भेंट नहीं कर सकता। उसके बाद हर महीने एक रविवार को एक आदमी मिल सकता है। विशेष कारण से इस नियम में परिवर्तन हो सकता है। इस परिवर्तन से

मिस्टर फ़्लिप्स ने लाभ उठाया। हमारे जेल में पहुंचने के तीसरे ही दिन मिस्टर फ़ोरटुन से जो चीनी किरस्तान हैं, मिलने के लिए मिस्टर फ़्लिप्स ने इजाज़त चाही और उन्हें आज्ञा मिल भी गई। मिस्टर फ़ोरटुन से मिलते समय वे महाशय मुझ से और क़ैदियों से भी मिले। उन्होंने हम सब से धैर्य्य और साहस की बातें कर के अपने रिवाज के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना की। मिस्टर फ़्लिप्स इस तरह तीन बार मिले। मि० डेविस भी एक पादरी हैं वे भी हम से मिले। मि० पोलक और मिस्टर कोअन ख़ास तौर पर इजाज़त ले कर मिलने आये थे। उन्हें तो सिर्फ़ आफ़िस के काम के लिए आने की इजाज़त मिली थी। जो लोग इस तरह मिलने आते हैं उनके साथ जेल का दारोग़ा रहता है और उसके सामने सब बातचीत करनी पड़ती है। "ट्रांसवाल लीडर" के स्वामी, मि० कार्टराइट, विशेष आज्ञा ले कर तीन बार मिले। वे भी सुलह कराने के ही उद्देश्य से आते। अतएव उन्हें ख़ानगी तौर पर दारोग़ा की ग़ैरहाज़िरी में—हम से मिलने की आज्ञा थी। पहिली भेंट में कार्टराइट साहब यह ज्ञात कर गये थे कि हिन्दुस्तानी जनता क्या चाहती है? किस बात को वह स्वीकार करेगी? दूसरी मुलाक़ात के समय वे अन्य अँगरेज़ सज्जनों को लेकर आये। साथ में एक लिखा हुआ काग़ज़—इक़रारनामा भी लेते आये। उसके मज़मून में आवश्यक रद्दोबदल करने के उपरान्त मि० कडवी, मि० नायडू तथा मैंने उस पर दस्तख़त बनाये। इस काग़ज़ तथा इस राज़ीनामे के विषय में "इण्डियन ओपिनियन" तथा अन्य स्थानों में बहुत कुछ लिखा गया है। अतएव यहां उसके विस्तार करने की ज़रूरत नहीं। चीफ़ मैजिस्ट्रेट मिस्टर प्लेकर्ड भी एक बार मिलने आये थे। उन्हें तो हमेशा भेंट करने का अधिकार है। परन्तु

यह नहीं कह सकते कि वे ख़ास हमीं से मिलने आये थे या हम सब लोगों को जेलख़ाने में देखने एक बार आ गये थे।

धर्म की शिक्षा।

वर्तमान समय के पश्चिमी देशों में क़ैदियों को धर्म की शिक्षा देने का रिवाज देखा गया है। जोहान्सबर्ग की जेल में क़ैदियों के लिए अलग गिरजाघर है। उस में सिर्फ़ गोरे क़ैदी ही जा सकते हैं। मैंने अपने तथा मिस्टर फ़ोरटुन के लिए ख़ास तौर इजाज़त चाही। गवर्नर ने कहा कि इस गिरजाघर में अकेले गोरे किरस्तान ही जा सकते हैं। हर रविवार को गोरे क़ैदी वहां जाते हैं। वहां भिन्न भिन्न पादरी उन्हें धर्म की शिक्षा देते हैं। काफ़िरों के लिए भी विशेष आज्ञा लेकर कितने ही पादरी आते हैं। काफ़िरों के लिए कोई ख़ास मन्दिर नहीं। अतएव वे जेल के मैदान में बैठा करते हैं। यहूदियों के लिए उन के पादरी आते हैं। परन्तु हिन्दू और मुसलमानों के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं। हिन्दुस्तानी क़ैदी वहां होते भी अधिक नहीं। तथापि उनको धर्म-शिक्षा के लिए जेल में कुछ भी प्रबन्ध नहीं, यह उनके लिए हीनता की सूचना है। इस विषय में दोनों जातियों को विचार कर के दोनों को धर्म-शिक्षा की व्यवस्था जब तक एक भी हिन्दुस्तानी क़ैदी हो, तब तक, करानी चाहिए। ऐसे काम करने के लिए मौलवी तथा हिन्दू-धर्मगुरु स्वच्छ-हृदय होने चाहिए। अन्यथा शिक्षा का उलटा रूप हो जाना सम्भव है।

अन्त।

जो कुछ जानने लायक़ बातें हैं उनका अधिकांश वर्णन

ऊपर हो चुका। क़ैदख़ाने में काफ़िरों के साथ हिन्दुस्तानियों की गिनती होती है, यह विषय विचारणीय है। गोरे क़ैदियों को सोने के लिए खटिया मिलती है। दांत मांजने को दतौन, नाक मुंह साफ़ करने को तौलिया। और क़ैदी को ये सब क्यों नहीं मिलते, इसकी खोज करनी चाहिये। इस विषय में हम क्यों कोशिश करें, ऐसा ख़्याल न रखिये। बूंद बूंद पानी से घड़ा भर जाता है। इस कहावत के अनुसार छोटी ही छोटी बातों से अपना मान घटता या बढ़ता है। "जिसके मान नहीं, उसके धर्म नहीं"—अरबी भाषा की पुस्तक में लिखी हुई यह बात बिल्कुल ठीक है। जातियां अगर बढ़ेंगी तो धीरे २ अपना मान बढ़ा कर ही बढ़ सकती हैं। मान से अभिप्राय उच्छृङ्खलता से नहीं। किन्तु डर अथवा आलस्य के वश अपना अभीष्ट न खोना चाहिए—इस प्रकार की मनःस्थिति और तदनुरूप आचरण को सच्चा मान सकते हैं। ऐसा मान वही मनुष्य पा सकता है जिसका सच्चा विश्वास—आधार—परमेश्वर पर होगा। मेरा तो यही कहना है और वह चौकस भी है, कि किसी काम का सत्यज्ञान प्राप्त करना अथवा किसी का वास्तव में पूरा करना यह गुण उस मनुष्य का नहीं हो सकता जिसमें सच्ची श्रद्धा नहीं—जो प्रकृत श्रद्धावान् नहीं।

मेरे जेल के अनुभव।

(दूसरी बार)

प्रस्तावना।

जनवरी में मैं एक बार जेल आ चुका हूं। उस वक्त जो कुछ वहां अनुभव हुआ उसकी अपेक्षा इस बार का अनुभव मुझे अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ता है। मैंने उससे कितनी ही शिक्षायें ग्रहण की हैं और मेरा ख़्याल है कि मेरा यह अनुभव अन्य भारतवासियों के लिए भी उपयोगी होगा।

सत्याग्रह की लड़ाई—निष्क्रिय प्रतिरोध—कितने ही प्रकार से किया जा सकता है। परन्तु राज्य-शासन-सम्बन्धी दुःखों को दूर करने का उपाय जेल ही देख पड़ता है। मेरा ख़्याल है कि हमलोगों को बार बार जेल जाना पड़ेगा। यह केवल इसी आन्दोलन के लिए नहीं, बल्कि आगे जो और और विपदायें उत्पन्न हों, उनके निमित्त भी यही अच्छा इलाज है। अतएव जेल के विषय की सभी ज्ञातव्य बातों को जान लेना हिन्दुस्तानियों का कर्त्तव्य है।

गिरफ्तारी।

जब मिस्टर सोराबजी जेल में चले गये तब मेरी भी इच्छा हुई कि उनके पीछे मैं भी पहुंच जाऊं तो अच्छा हो, अथवा उनके छूटने के पहिले ही यह आन्दोलन पूर्ण हो जाय।

उस समय मेरी आशा व्यर्थ हुई। परन्तु जब नेटाल के वीर नेता जेल में भेजे गये तब फिर वही इच्छा प्रबल हो उठी और बाद में वही पूरी भी हुई। डरबन से लौटते हुए सातवीं अक्टूबर को मैं वोकसरस्ट स्टेशन पर पकड़ा गया, क्योंकि मेरे पास क़ानून-आवश्यक सर्टिफ़िकेट न था और मैंने अंगूठे की निशानी देने से इनकार किया था।

मैं डरबन इस उद्देश से गया था कि नेटाल में शिक्षा समाप्त करने वाले तथा ट्रान्सवाल के प्राचीन निवासी हिन्दुस्तानियों को ले आऊं। आशा यह थी कि नेटाल के नेताओं का अनुपस्थिति के कारण कितने ही हिन्दुस्तानी यहां से आने को तैयार हो जांयगे। सरकार का भी यही ख़याल था। अतएव वोकसरस्ट के जेलर को हुक्म मिला था कि सौ से भी अधिक हिन्दुस्तानियों के लिए प्रबन्ध कर रखना। उसके अनुसार प्रिटोरिया से डेरे, कम्बल, बरतन इत्यादि भेजे भी गये थे। जब मैं कितने ही हिन्दुस्तानियों के साथ वोकसरस्ट उतरा तब हमारे साथ पुलिस भी बहुत थी। परन्तु उसकी सारी दौड़-धूप व्यर्थ हुई। जेलर और पुलिस को निराश होना पड़ा। क्योंकि डरबन से मेरे साथ बहुत ही कम हिन्दुस्तानी आये थे। उस गाड़ी में तो सिर्फ ६ आदमी थे और उसी दिन दूसरी गाड़ी से ८ आदमी और आये। अर्थात् सब मिलाकर १४ हिन्दुस्तानी आये। सब के सब गिरफ़्तार किये गये और जेलख़ाने में पहुंचाये गये। दूसरे दिन हम सब मैजिस्ट्रेट के सामने लाये गये परन्तु सात दिनों के लिए मुक़द्दमा मुलतवी कर दिया गया। 'बैल' पर बैठ कर जाने से हमने इनकार किया। दो दिन बाद मि० भावजी करसन जी कोठारी आये। वे बवासीर से तंग थे। बीमारी

बढ़ जाने तथा बोकसरस्ट में खूटों (पीकेट) की आवश्यकता होने के कारण वे बैल पर बैठ कर गये।

जेल में हमारी दशा।

हम जब जेल में पहुंचे तब मि० दाऊद महम्मद, मि० रुस्तम जी, मि० आँगलिया, (जिनकी सहायता से आन्दोलन का दूसरा भाग आरम्भ हुआ था) मि० सोराबजी अडा-जणीया तथा अन्य हिन्दुस्तानी भाई मिल कर कोई २५ आदमी थे। रमज़ान का महीना था। अतएव मुसलमान भाई रोज़ा रखते थे। उनके लिए ख़ास इजाज़त से शाम को मि० इसप सुलेमान क़ाज़ी के यहां से भोजन आता था। इस से वे रोज़े बराबर रख सकते थे। बाहर की जेल में बत्ती का प्रबन्ध न था। अतएव रमज़ान के लिहाज़ से बत्ती और घड़ी रखने का हुक्म मिला। सब, मि० आँगलिया के पीछे, नमाज़ पढ़ते थे। पहिले दिनों में तो रोज़े वालों को कड़ी मिहनत के काम दिये गये थे, परन्तु पीछे उनसे वैसे काम, नहीं लिये गये।

जो हिन्दुस्तानी क़ैदी बाक़ी बच रहे उन्हें अपने ही लोगों के लिए रसोई बनाने की आज्ञा थी। सो मि० उमिया-शङ्कर शेलत तथा मि० सुरेन्द्रनाथ मेढ़, इन दो को रसोई बनाने का काम सौंपा गया। और जब क़ैदियों की संख्या बढ़ गई, तब मि० जोशी शामिल किये गये। इन भाइयों को जब देशनिकाला हुआ तब वह काम मि० रतनजी सोढ़ा, मि० राघव जी तथा मि० भावजी कोठारी को करना पड़ा। इसके बाद जब क़ैदी बहुत ही बढ़ गये तब मि० लालभाई और मि० उमर उसमान भी लगे। रसोई बनानेवालों को सबेरे २-३ बजे उठना पड़ता

था और शाम को ५-६ बजे तक उसी में लगा रहना पड़ता था। जब अधिकांश क़ैदी छोड़ दिये गये तब भोजन बनाने का भार मि० मूसा ईसाफ़जी तथा इमाम साहब और मि० बावाज़िरे ने उठाया। इस तरह जो भारतीय हमीदिया इस्लामिक सोसायटी के कर्ता-धर्ता तथा व्यापारी थे और जिन्हें कभी रोटी बनाने का काम न पड़ा था उनके हाथ का बनाया भोजन जिसने पाया उसे मैं बड़भागी समझता हूं। जब इमाम साहब और उनके साथी छूटे तब यह सौभाग्य मुझे मिला। मुझे इस काम का थोड़ा बहुत तजुर्बा था। अतएव दिक़्क़त न उठानी पड़ी। चार दिनों तक ही मेरे ज़िम्मे यह काम रहा। उसके बाद वह काम मि० हरीलाल गांधी ने किया।

जब हम जेल में गये तब वहां सोने के लिए तीन कोठरियां थीं। उन्हीं में हिन्दुस्तानियों का समावेश किया गया था। इस जेल में हिन्दुस्तानी काफ़िरों से अलग रक्खे जाते थे।

जेल का प्रबन्ध।

पुरुषों की जेल के दो विभाग हैं। एक योरोपियनों के लिए और दूसरा काफ़िरों के लिए—इसमें उनका भी अन्तर्भाव होता है जो गोरे अर्थात् सफ़ेद नहीं हैं। अतएव जेलर हिन्दुस्तानियों को काफ़िरों के साथ रख सकता था, परन्तु उसने उनकी तजवीज़ गोरों के विभाग में की थी। क़ैदियों के लिए छोटी छोटी कोठरियां होती हैं और प्रत्येक कोठरी में १०-१५ या इससे भी अधिक आदमियों के रहने की गुन्जाइश होती है! क़ैदख़ाना सारा पत्थर का चुना हुआ है। कोठरियाँ ऊँची हैं। दीवारों पर प्लास्टर किया गया है और

फ़र्श हमेशा धोई जाती है जिससे कि वह बड़ी सफ़ा रहती है। दीवारों पर कितनी ही बार चूना पोता जाता है। अतएव वे हमेशा नई की तरह मालूम होती हैं। आँगन काले पत्थरों से बनाया गया है। वह सदा धोया जाता है। आँगन में ही स्नानगृह है। तीन आदमी एक साथ बैठ कर नहा सकें, इतनी जगह उसमें है। दो पाख़ाने हैं। बैठने के लिए दो बेंचें हैं। ऊपर कटीले तारों की जाली लगी हुई है। यह इस लिए कि क़ैदी ऊपर चढ़ न सकें। प्रत्येक कोठरी में प्रकाश और हवा अच्छी आ जा सकती है। छः बजे शाम को क़ैदी रोके जाते हैं और छः ही बजे सवेरे दरवाज़ा खुलता है। दरवाज़े पर ताला जड़ दिया जाता है। इस कारण यदि किसी को कोई कुदरती हाजत अर्थात् पाख़ाना इत्यादि लगे तो वह बाहर नहीं जा सकता। अतएव कोठरी में ही उस क्रिया के निमित्त जन्तुनाशक पानी से भरे हुए पात्र रक्खे रहते हैं।

भोजन।

जब मैं बोक्सरस्ट की जेल में गया तब हिन्दुस्तानी क़ैदियों को सवेरे 'पू पू' और दोपहर तथा शाम को चावल और तरकारियां मिलती थीं। तरकारी में प्रधानता आलुओं की थी। घी बिलकुल नहीं दिया जाता था। जो कच्ची जेल में थे उन्हें पूर्वोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त सवेरे 'पू पू' के साथ एक औंस चीनी और दोपहर को आधी रतल रोटी मिलती थी। कच्ची जेलवाले कितने ही आदमी अपनी चीनी और रोटी में से कुछ हिस्सा पक्की जेलवालों को भी दे दिया करते थे। क़ैदियों को दो दिन मांस खाने का हक़ था, परन्तु हिन्दुओं तथा मुसलमानों, किसी के भी काम का वह न होता था। अतएव उसके एवज़ हमें और कोई चीज़ मिलनी चाहिए थी। इसके

लिए हमने अर्ज़ी भी दी। तब हमें मांस के दिन एक औंस घी और आधा रतल बाल (बीन्स) मिलने लगा। इसके सिवा जेल के बग़ीचे में एक तरकारी आपही आप उगती थी और उसे काम में लाने की इजाज़त भी मिली थी। कभी २ बग़ीचे में से प्याज़ भी लाने की सुविधा कर दी गई थी। अतएव घी और बाल (बीन्स) के मिलने के बाद भोजन की हमें कोई कहनेलायक़ शिकायत न रह गई थी। जोहान्सबर्ग की जेल में भोजन भिन्न २ प्रकार का दिया जाता है। तरकारी नहीं दी जाती; शाम को दो दिन सब्ज़ी और 'पू पू' मिलता है, तीन दिन बाल (बीन्स) और एक दिन आलू और 'पू पू' मिलता है।

यह भोजन यद्यपि अपनी प्रथा के अनुसार नहीं है तथापि साधारण तौर पर बुरा नहीं कहा जा सकता। कितने ही हिन्दुस्तानियों को 'पू पू' पर रुचि नहीं और वे जान-बूझ कर नहीं खाते। परन्तु मैं तो इसे बड़ी भारी भूल समझता हूं। 'पू पू' मीठा और पौष्टिक (शक्ति-वर्द्धक) पदार्थ है। गेहूं के बजाय इस देश में वह काम में लाया जा सकता है। अगर इसमें शकर मिल जाय तो फिर बड़ा ही स्वादिष्ट हो जाता है। परन्तु शकर न होने पर भी यदि भूख लगी हो तो ख़ूब मीठा लगता है। इसके खाने की आदत पड़ जाने के बाद पूर्वोक्त भोजन से आदमी भूखा नहीं रह सकता। यही नहीं, उस से शरीर हृष्ट-पुस्ट भी हो जाता है। इसमें कुछ रद्दोबदल हो जाय तो यह बिल्कुल पूरा भोजन हो जाय। परन्तु खेद की बात तो यह है कि हम लोग इतने चटोरे हो गये हैं और हमारी आदतें ऐसी पड़ रही हैं कि हमें अपने अभ्यास के अनुसार यदि खाना न मिले तो हमारा मिज़ाज बिगड़ जाता

है। यह अनुभव मुझे वोकसरस्ट में हुआ और उस से बड़ा दुखी रहता। भोजन का झगड़ा हमेशा दरपेश रहता और 'भोजन ही जीवन नहीं है अथवा खाने ही के लिए हम नहीं जीते हैं' यह शोर हुआ करता। सत्याग्रहियों के लिए ऐसा करना उचित नहीं। भोजन में परिवर्तन कराना, यह अपना काम है। परन्तु परिवर्तन न हो तो जो मिले उसी पर सन्तुष्ट रह कर सरकार को दिखा देना चाहिए कि हम उस से हार खाने वाले नहीं हैं। और इसे हम अपना कर्तव्य मानें। कितने ही हिन्दुस्तानी खुराक की ही असुविधा के कारण जेल से डरते हैं। उन्हें चाहिए कि वे विचार कर के भोजन-विषयक अपनी लालसा रोकें।

पक्की जेल मिली।

मेरे ऊपर कहे अनुसार हम सब का मुक़दमा सात दिनों तक मुलतवी रहा। अर्थात् १४ वीं अक्टूबर को मुक़दमा चला। उस समय अन्य हिन्दुस्तानियों को एक मास और कितनों ही को आठ हफ़्ते की सख़्त क़ैद की सज़ा मिली। एक लड़का ११ वर्ष का था। उसको भी १४ दिन की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। मुझे डर था कि शायद मुझ पर से मुक़दमा उठा लिया जाय। इस कारण मुझे रंज हो रहा था। और लोगों के मुक़दमें फ़ैसल हो जाने के बाद मैजिस्ट्रेट ने थोड़ी देर के लिए मुक़दमें मुलतवी रक्खे। इससे मैं और भी घबड़ाया। मेरी चिन्ता और भी बढ़ी। पहले तो चर्चा यह चल रही थी कि मुझ पर रजिस्टर न दिखलाने और अंगूठा की निशानी न करने की तुहमत (इलज़ाम) लगाया जायगा। यही नहीं बल्कि अन्य हिन्दुस्तानियों को ट्रांसवाल में जाने का दोष भी मढ़ा जायगा। मैं अपने मन में उधेड़बुन कर

ही रहा था कि इतने में मैजिस्ट्रेट फिर अदालत में आये और मेरा मुक़द्दमा आरम्भ हुआ। मुझे २५ पौण्ड जुरमाने की सज़ा और जुरमाना न दाख़िल करने की हालत में २ मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। इस से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने को भाग्यवान समझने लगा कि मुझे अन्य भाइयों के साथ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पोशाक।

सज़ा होने के बाद हमें जेल की पोशाक पहनाई गई। एक छोटा सा मज़बूत उटङ्गा पाजामा (जाँघिया), खद्दड़ की एक क़मीज़, उस के ऊपर एक और वस्त्र, एक टोपी, एक तौलिया, मोज़े और सेण्डल (Sandal—पहाड़ी ढंग का जूता) इतने कपड़े मिले। मैं समझता हूं कि ये कपड़े काम करने के वक़् बड़े सुभीते के हैं। सादे और टिकाऊ होते हैं। ऐसे कपड़ों के विषय में हमें कहनेलायक़ कोई शिकायत नहीं। यदि रोज़मर्रा ऐसे कपड़े पहनने को मिलें तो भी हर्ज नहीं। गोरों के कपड़े और तरह के होते हैं। उन्हें बैठकदार टोपी मिलती है। उन्हें घुटने तक के मोज़े और दो तौलियों के सिवा रूमाल भी दिये जाते हैं। हिन्दुस्तानियों को भी रूमाल देने की ज़रूरत मालूम होती है।

काम।

जिन क़ैदियों को सख़्त क़ैद की सज़ा मिलती है उन से ६ घण्टे रोज़ काम कराने का हक़ सरकार को है। क़ैदी सदा ६ बजे कोठरियों में बन्द किये जाते हैं। सवेरे ५॥ बजे उठने का घण्टा बजता है। ६ बजे कोठरी का दरवाज़ा खुलता

है। कोठरियों में बन्द करते तथा उन में से बाहर निकालते समय क़ैदियों की गिनती की जाती है। प्रत्येक क़ैदी को हुक्म दिया जाता है कि अपने अपने बिछौने के पास साव-धानी से खड़े रहो, ताकि गिनती जल्दी और ठीक हो जाय। हर एक क़ैदी को ६ बजने के पहले अपना बिछौना समेट कर और हाथ मुंह धो कर तैयार रहना चाहिए। सात बजे उन्हें अपने काम पर हाज़िर हो जाना पड़ता है। काम तरह तरह का होता है। पहिले दिन तो हमें आम रास्ते पर एक खुली ज़मीनके खोदने का काम मिला। वह ज़मीन बाग़-लगाई (Plantation) के लिए तैयार की जाती थी। हम लगभग ३० हिन्दुस्तानी उस काम पर लगाये गए। जो काम करने में असमर्थ थे उन्हें जाने की ज़रूरत न थी। हमें क़ाफ़िरों के साथ लिवा ले गये। ज़मीन बड़ी कड़ी थी। उसे कुदाली से खोदना था। काम कड़ा था। धूप तेज़ पड़ रही थी। छोटी जेल से वह स्थान कोई डेढ़ मील होगा। सारे हिन्दुस्तानी झपाटे से काम करने लगे। परन्तु अभ्यास कम था। इस से सब बहुत थक गये। बा० तालेवन्त सिंह के पुत्र रविकृष्ण भी उन लोगों में थे। उन्हें काम करते देख मेरा कलेजा सूखता था। उनकी मिहनत देख कर मैं ख़ुश भी होता। ज्यों ज्यों दिन बढ़ता गया काम का बोझ अधिक मालूम होता गया। वार्डर (दारोग़ा) बड़ा तेज़-मिज़ाज अर्थात् सख़्त था। बराबर 'चलाओ, चलाओ' चिल्लाता रहता। इससे हिन्दुस्तानी बड़े घबड़ाते। कितनों ही को मैंने रोते भी देखा। एक आदमी का पैर फूला देख कर मेरा कलेजा फट रहा था। तथापि मैं सब से कहता था कि सब कोई ऐसा दिल लगा कर काम करो कि दारोग़ा को टोकने की ज़रूरत ही न पड़े। मैं स्वयं भी थक गया। हाथों में बड़े २ छाले पड़ गये। उनसे पानी बहने लगा। झुका

मुश्किल से जाता था और कुदाली भी भारी लगने लगी। मैं ईश्वर से विन्ती किया करता कि मेरी लाज रक्खो। मुझे इतना बल दो कि मैं अपङ्ग न होऊं और बराबर काम करता रहूं। मैं तो उसी पर भरोसा रख के सब काम किया करता। दारोग़ा मुझे टोकने लगा। हमारे थक जाने पर वह टोकता। मैंने उस से कहा कि टोकने की ज़रूरत नहीं। मैं दिल तोड़ कर काम करने वाला हूं। दम भर करूंगा। इसी समय मैंने मिस्टर जीनाभाई देसाई को मूर्छित होते हुए देखा। मैं अपनी जगह से तो हट नहीं सकता था, अतएव ज़रा थमा। दारोग़ा वहां गया। मैंने सोचा कि मुझे जाना ही चाहिए। मैं दौड़ा गया और भी दो हिन्दुस्तानी आये। जीनाभाई पर पानी छिड़का गया। उन्हें होश आया। दारोग़ा ने औरों को काम पर भेज दिया। मुझे उनके पास बैठने दिया। जीनाभाई के ऊपर खूब पानी छोड़ने के बाद उन्हें आराम मालूम हुआ। मैंने दारोग़ा से कहा कि ये पैदल घर नहीं जा सकते। तब गाड़ी मँगाई गई। मुझे उन्हें ले जाने का हुक्म मिला। जीनाभाई के सिर पर पानी गिराते समय मैं सोचने लगा कि, मेरे 'शब्दों पर भरोसा—आधार रख कर— कितने ही हिन्दुस्तानी जेल भोग रहे हैं। यदि मेरी सलाह अनुचित हो तो मैं कितना पापी हूं? मेरी बदौलत उन्हें इतना दुःख भोगना पड़ता है?' यह कह कर मैंने एक लम्बी सांस ली। ईश्वर को साक्षी समझ कर मैंने फिर सोचा और विचार में गोता लगा कर मैं फिर हँसता हुआ निकला। मुझे जान पड़ा कि मैंने जो सलाह दी है वह उचित है। दुःख भोगने में ही सुख है तो फिर दुःख के लिए रंज करने की आवश्यकता नहीं। अभी तो मूर्छा ही आई है पर यदि मौत भी आजाय तो मैं दूसरी सलाह नहीं दे सकता। जन्म-बन्धन की अपेक्षा इस दुख को भोगकर

बेड़ियों से मुक्त होना ही अपना कर्तव्य है—यह सोच कर मैं निश्चिन्त हो रहा और जीनाभाई को हिम्मत और दिलासा देता रहा।

गाड़ी आते ही जीनाभाई उसमें सुलाये गये। गाड़ी रवाना हुई। बड़े दारोग़ा के पास शिकायत गई। जांच होने पर छोटे दारोग़ा को चेतावनी मिली। दोपहर को जीनाभाई काम पर नहीं लाये गये। उसी तरह और भी चार हिन्दुस्तानी कमज़ोर मालूम हुए। बाक़ी सब काम पर आ डटे। दोपहर को बारह से एक बजे तक भोजन का समय है और एक से पांच बजे तक काम करना पड़ता है। दोपहर को हमारी देख रेख गोरे दारोग़ा के बजाय काफ़िर दारोग़ा को मिली। वह गोरे दारोग़ा से अच्छा था। वह बहुत टोक-टाक न करता था। कभी कभी कुछ कह देता था। इस समय अर्थात् दोपहर को काफ़िरों और हिन्दुस्तानियों को उसी जगह, परन्तु भिन्न भिन्न भागों में रक्खा गया। हम लोगों को ज़रा पोली (मुलायम) ज़मीन खोदने को दी गई।

जिस आदमी ने यह कन्ट्राक्ट अर्थात् ठीका लिया था उससे मेरी बातें हुईं। उसने कहा कि हिन्दुस्तानी क़ैदियों की मज़दूरी से मुझे हानि होना सम्भव है। उसने स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तानी एकाएक उतना शारीरिक श्रम नहीं कर सकते जितना कि काफ़िर कर सकते हैं।

मैंने उस से कहा कि हिन्दुस्तानी किसी दारोग़ा के डर से काम करने वाले नहीं। वे तो अकेले परमेश्वर का डर रख कर जितना बनेगा, काम करेंगे। परन्तु पीछे मुझे

वह विचार बिल्कुल बदलना पड़ा । क्यों मुझे ऐसा करना पड़ा, इसका वर्णन सुनिए:—

दूसरे दिन हम फिर काम के लिए बाहर निकाले गये। परन्तु गोरे दारोग़ा के साथ नहीं, एक काफ़िर दारोग़ा के साथ । यह उस दिन वाला काफ़िर न था । यह भी भला आदमी था। हमें ज़रा भी न टोकता था।

हम भी भले ही आदमी थे। क्योंकि हम भी नेक-नीयती से जितना बनता था काम करते थे। जो काम हमें सौंपा गया था वह भी था मामूली ही। म्यूनीसिपल्टी की ज़मीन में आम रास्ते के पास गड्ढे खोदने और पूरने थे। इसमें थकावट आ सकती थी। मुझे अनुभव हो गया कि केवल परमात्मा साक्षी होता है । हम कामचोर थे। क्योंकि लोगों के काम में ढील देखी जाती थी । इस तरह काम की चोरी हमारे लिए बड़े ऐब की बात है। यह मेरा निज का मत है। हमारे आन्दोलन में जो ढील (सुस्ती) हुई है उसका भी कारण यही है । सत्याग्रह की राह जैसी सहल है वैसी ही अरक्षित—अव्यवस्थित—भी है । हमारी नियत साफ़ होनी चाहिए। हमारा सरकार से वैर तो है नहीं । हम उसे अपना शत्रु भी नहीं समझते । सरकार का सामना किया जाय तो उसकी भूल सुधारने के लिए और ऐब दूर करने के लिए। हम उसके अनिष्ट से प्रसन्न नहीं । उसका सामना करते हुए भी उसका भला चाहें । इस विचार से तो हमें जेल में शक्ति के अनुसार काम करना चाहिए। शायद हम यह कहें कि हमें काम करने की नीतिसे कोई वास्ता नहीं। अतएव जब दारोग़ा हो, तभी हमें पूरा काम करना चाहिए । ऐसा न होना चाहिए । काम करना यदि उचित और न्याय न हो तो हमें

दारोग़ा की परवाह न करना चाहिए। हमें उसका सामना करना चाहिए और उसके परिणाम-स्वरूप यदि और सज़ा मिले तो उसे भोगनी चाहिए। पर कोई हिन्दुस्तानी यह नहीं मानता। जो काम नहीं करते वे सिर्फ़ आलस्य और कामचोर होने के कारण ही नहीं करते। ऐसा आलस्य और ऐसी चोरी हमें शोभा नहीं देती। सत्याग्रही के नाते हमें जो काम दिया जाय, करना चाहिए। और यदि दारोग़ा का डर न रखते हुए काम करें तो हमें कष्ट उठाना ही न पड़े। अतः काम की चोरी के कारण ही लोगों को जेल में कितने ही कष्ट उठाने पड़े थे।

इतनी बात के बाद अब हम फिर अपने प्रकृत विषयों पर आते हैं। इस तरह दिन ब-दिन काम आसान होता गया। जिस दल में मैं गया था उसे उसके बाद जेल का बाग़ीचा साफ़ रखने का तथा पौधे लगाने इत्यादि का काम मिला। मकई लगाने और आलुओं की क्यारियां साफ़ करने तथा उन के पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का काम उनमें प्रधान था।

दो दिन के बाद हम म्युनिसिपल्टी का तालाब खोदने भेजे गये। वहां खोदना, मिट्टी की ढेरी लगाना तथा उसे ढोना पड़ता था। वह काम कठिन था। पर दो दिनों तक ही इसका अनुभव मिला। मेरे पहुंचे पर वरम आ गया पर मिट्टी के उपचार (इलाज) से वह अच्छा हो गया।

यह स्थान ४-५ मील दूर था। हम ट्राली (ठेले) में बैठ कर जाते थे। तालाब में ही खाने को बनाना पड़ता था। अतएव आटा, सामान और ईंधन भी साथ ही लेजाना पड़ता था। इस से भी ठेकेदारों को सन्तोष न हुआ। हम काफ़िरों की बराबरी न कर सके। दो दिन तक तालाब में

हल से काम लिया गया। फिर दूसरा काम हमें सौंपा गया। आज तक वे ही हिन्दुस्तानी ले जाये जाते थे जो भिन्न भिन्न काम कर सकते थे। अब ऐसा करने के लिए उनके विभाग किये गये। कितने ही सोल्जरों की क़बरों के आस-पास उगी हुई घास छीलने के लिए भेज दिये गये। बाक़ी लोग क़बरस्तान साफ़ करने में लगा दिये गये। यही क्रम जारी रहा। इसी बीच बरटन के मुक़द्मे के बाद कोई ५० हिन्दुस्तानी छूट गये। तब हमेशा बाग़ीचे में काम कराया जाता। वहां खोदना, फ़सल काटना, कूड़ा बटोरना इत्यादि काम था। यह काम भारी नहीं समझा जाता। इससे तन्दुरुस्ती बढ़ती है। लगातार नौ घण्टे यही काम करते रहने से पहलेपहल जी ऊब उठता है परन्तु अभ्यास हो जाने पर फिर ऐसा नहीं होता।

इस काम के उपरान्त हर एक कोठरी में जो पेशाब का पात्र रक्खा रहता है उसे उठा कर ले जाने का काम कराया जाता है। मैंने देखा है कि यह काम करते हुए लोग घिनाते हैं। पर वास्तव में इसमें घिनाने की कोई बात नहीं। काम करने में हलकापन या ऐब मानना भूल है। फिर जेल के क़ैदियों के लिए तो नफ़रत के ख़याल की गुन्जाइश ही नहीं। मैं ने देखा कि कितनी ही बार कोठरी में यह सवाल दरपेश रहता कि पेशाब का पात्र कौन उठावेगा। यदि हम सत्याग्रह के आन्दोलन का रहस्य समझते तो ऐसे सवालों की अपेक्षा हम में प्रतिस्पर्धिता विशेष देख पड़ती। जिसके हिस्से में ऐसा काम आ पड़े उसे अपने को धन्य समझना चाहिए। अर्थात् सरकार हमें ऐसा काम दे दे तो उसमें हमारी कोई इज़्ज़त नहीं, बल्कि हम में से जो आप ही पहले उसे करने को तैयार हो जाय वही श्रेष्ठ समझने लायक़ है। जब हम

कष्ट सहने को तैयार हैं तो फिर एक को दूसरे से अधिक कष्ट भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए और जिस पर अधिक काम आ पड़े उसे अपना गौरव समझना चाहिए। ऐसा आदर्श मि० हसन मिरज़ा ने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरज़ा को फेफड़े का बहुत बुरा रोग है। वे हैं भी नाज़ुकमिज़ाज आदमी। तथापि जब जब जो काम उन्हें मिला, उन्होंने ख़ुशी से उसे किया। इतना ही नहीं बल्कि अपनी बीमारी की परवा भी न की। एक बार एक काफ़िर दारोग़ा ने उन्हें बड़े दारोग़ा का पाख़ाना साफ़ करने पर रख दिया। उन्होंने तुरन्त ही उस काम को मंजूर कर लिया। यह काम उन्होंने कभी न किया था। इससे उन्हें क़ै हो गई। उन्होंने उसकी भी परवा न की। जिस समय वे दूसरा पाख़ाना साफ़ कर रहे थे मैं वहां जा पहुंचा, देखते ही मैं आश्चर्य से सन्न हो गया। मेरे मन में उनके विषय में प्रेम उमड़ उठा। पूछताछ करने पर पहले पाख़ाने की घटना की ख़बर मिली। एक बार उसी काफ़िर दारोग़ा को बड़े दारोग़ा ने हुक्म दिया था कि हिन्दुस्तानियों के जो पाख़ाने ख़ास तौर पर बने हैं उनकी सफ़ाई के लिए दो हिन्दुस्तानियों को लाओ। दारोग़ा मेरे पास आया और उसने दो आदमी मुझसे मांगे। मैं तो स्वयं उस काम को अच्छा समझता था। मुझे तो ऐसे काम से नफ़रत है नहीं। अतएव मैं ख़ुद ही चला गया। मेरा ख़याल है कि हमें ऐसे काम करने का अभ्यास होना चाहिए। ऐसे कामों को हम बुरी नज़र से देखते हैं। यही कारण है जो कितनी ही बार हम अपने आंगनों तथा पाख़ानों को ख़राब हालत में पाते हैं। यही नहीं, इसी के बदौलत हम मिरगी इत्यादि रोगों को पैदा करते हैं, अथवा

फैलाते हैं। हम लोग यही मान बैठे हैं कि पाख़ाना ख़राब ही है और इस कारण हम कितनी ही बार गन्दगी के दोष से दूषित माने जाते हैं। इसी क़िस्म का काम न करने के कारण एक हिन्दुस्तानी को सालिटरी जेल की अर्थात् काल-कोठरी में बन्द रहने की सज़ा मिली थी। सज़ा दी गई तो कोई परवा नहीं, पर उस सज़ा के भोगने की ज़रूरत न थी और ऐसा काम करने में हम आनाकानी करें, यह ठीक नहीं। अब जब मैं उस काम के लिए चला, दारोग़ा औरों को टोकने लगा कि तुम भी चलो। तब तो पूर्वोक्त हुक्म की बात फैल गई और यद्यपि काम बड़ा कम था तथापि तुरन्त ही मिस्टर उमर उसमान तथा मिस्टर रुस्तम जी मदद के लिए दौड़े। इस घटना के उल्लेख का अभिप्राय यह कि सरकार जिस काम को करावे उसे करने में उन्होंने भी अपना मान समझा। यदि हम दिये गये काम से नाराज़ रहें तो हम सच्ची लड़ाई के काम के नहीं।

जोहान्सबर्ग को तबादला।

यह तो हुई वोकसरस्ट के जेल की कथा। अब आगे का हाल सुनिये :— मुझे दो महीने की सज़ा मिली थी। वह सब की सब मुझे वोकसरस्ट में न भोगनी पड़ी। कुछ दिनों के लिए मैं अचानक जोहान्सबर्ग भी भेज दिया गया था। वहां जो कुछ हुआ वह भी जानने लायक़ है। २५ अक्टूबर को मुझे वहां ले गये, क्योंकि दरज़ी डाह्य के मुक़दमे में मेरा बयान होने वाला था। इसके सिवा और भी कारण होंगे, इत्यादि तर्क-वितर्क मेरे मन में होते थे। हम सब आशापूर्ण थे। अतएव हमने कहा कि शायद मिस्टर स्मट्स की भेद की बात

होगी। परन्तु पीछे ज्ञात हुआ कि यह कुछ नहीं था। मुझे लेजाने के लिए जोहान्सबर्ग से एक दारोगा ख़ास तौर पर भेजा गया था। दारोगा के तथा मेरे लिए रेलवे का एक डब्बा दिया गया था। सेकेण्डक्लास का टिकट था। इसका कारण यह था कि उसमें तीसरे दरजे की गाड़ियां थी ही नहीं। जान पड़ता है कि क़ैदियों को तीसरे ही दरजे में ले जाते हैं। रास्ते में भी मैं क़ैदी की पोशाक में था। मेरा सामान मुझी से उठवाया जाता था। जेल से स्टेशन तक पैदल जाना पड़ा। जोहान्सबर्ग पहुंचने पर वहां से भी जेल तक सामान लादकर जाना पड़ा। इस बात पर अख़बारों में बड़ी बड़ी आलोचनायें हुई। विलायत की पार्लियामेण्ट में प्रश्न किये गये। बहुतों के दिल दुखे। सब लोगों का यही ख़याल हो गया कि मेरे सदृश राजनैतिक क़ैदी को साधारण क़ैदी की पोशाक में लेजाना और बोझा उठवाना न चाहिए था।

लोगों का दिल दुखता था—यह इससे जाना जाता है कि जब मिस्टर आँगलिया ने सुना कि मुझे इस तरह जाना पड़ेगा तब उनकी आँखों में आंसू छलछला आये। मिस्टर नायडू तथा मि० पोलक को ख़बर हो गई थी, वे स्टेशन पर मिले। उन्हें भी मेरी दशा देखकर रुलाई आने लगी। ऐसा रोने का कोई कारण न था। इस देश में राजनैतिक और अन्य क़ैदियों में सरकार भेद रक्खे, यह सम्भव नहीं। हमें जितना अधिक कष्ट दिया जाय और हम उसे भोगें, उतनी ही जल्दी छुटकारा मिलेगा। फिर जेली पोशाक पहनना और सामान लादना यह विचारने पर मेरी समझ से तो दुःखस्वरूप नहीं जान पड़ता। परन्तु दुनिया तो ऐसी वस्तु को ऐसा ही मानती है। इस कारण विलायत में खलबली मच गई।

रास्ते में दारोग़ा की ओर से ज़रा भी कष्ट न मिला। मेरा यह निश्चय था कि दारोग़ा स्वयं यदि ज़ाहिरा इजाज़त न दे तो जेल के सिवा दूसरा भोजन ग्रहण न करूंगा। इससे आज तक मैंने जेल के ही भोजन पर निर्वाह किया था। रास्ते के लिए खाना साथ बंधा भी न था। दारोग़ा ने मुझे अपनी इच्छा के अनुसार भोजन पाने की इजाज़त दी। स्टेशन-मास्टर ने मुझे पैसे देने चाहे। उसकी सहानुभूति बड़ी उत्तेजित हो उठी थी। मैंने उसका उपकार माना और पैसे लेने से इनकार किया। मिस्टर क़ाज़ी स्टेशन पर मौजूद थे। उनके पास से १० शिलिंग लिये। उन से अपने तथा दारोग़ा के लिए मैंने खाने को लिया।

शाम होते २ जोहान्सबर्ग पहुंचे। दारोग़ा मुझे हिन्दुस्तानियों से न मिला कर बाला बाला ले गया। क़ैदख़ाने में जहां रोगी काफ़िर क़ैदी थे उस कोठरी में मेरा बिछौना डाला गया। इस कोठरी में रात बड़ी बेचैनी और घबराहट से कटी। मुझे ख़बर नहीं थी कि मुझे दूसरे हिन्दुस्तानियों के पास ले जायंगे। मैं यही समझा था कि मुझे यहीं रक्खेंगे। इससे मैं बहुत व्याकुल हुआ। तथापि मैंने जी-जान से निश्चय किया कि मेरा तो कर्तव्य यही है कि जो कुछ कष्ट मुझे मिले सहन करूं। भगवद्गीता मेरे साथ थी। मैंने उसे पढ़ा। उस समय के अनुकूल श्लोकों को पढ़ कर के उनका मनन किया और धैर्य्य धारण किया। मेरी घबराहट का कारण यह था कि मुझे काफ़िर तथा चीनी क़ैदी जङ्गली, ख़ूनी और अनीतिमान् मालूम हुए। उनकी बोली मैं न समझता था। काफ़िरों ने मुझ से पूछताछ शुरू की। उनमें मैंने हंसी ठट्ठा का आभास देखा। मैं समझ न सका। कुछ उत्तर न दिया।

उन्होंने मुझ से टूटी फूटी अंग्रेज़ी में पूछा—"यहां तू किस लिए लाया गया है ?" मैंने कुछ जवाब दे दिया और चुप हो रहा। चीनी ने फिर सवाल करना आरम्भ किया। वह और भी बुरा मालूम हुआ। मेरे बिछौने के सामने आकर वह मुझे घूरने लगा। मैं चुप रहा। फिर वह काफ़िरके बिछौने की ओर गया। वहां दोनों एक दूसरे से फोश (गन्दा) मज़ाक़ करने लगे। वे परस्पर के दोषदर्शन भी कराने लगे। ये दोनों क़ैदी खूनी या डकैत मालूम होते थे। यह देख कर मेरी नींद (औंघाई) हवा हो गई। यह सब कल गवर्नर को सुनाऊंगा, यह सोच कर मुझे बहुत रात बाद कुछ झपकी आ गई।

सच्चा दुःख-कष्ट तो यह था। सामान उठाना तो इस के आगे कोई चीज़ नहीं। जो अनुभव मुझे हुआ है ऐसा ही और हिन्दुस्तानियों को भी होता होगा। वे भी इसी तरह डरते होंगे, यह याद कर के मैं खुश हुआ कि ऐसा कष्ट मैं भी भोग रहा हूँ। मैंने कहा कि यह अनुभव कर के अब मैं सरकार से और भी ज़ोरशोर से लडूंगा और जेल में आकर इस विषय का सुधार कराऊंगा। सत्याग्रह की लड़ाई का यह सब टेढ़ा—सर्प की गति के सदृश—लाभ है। दूसरे दिन उठते ही मुझे जहां और हिन्दुस्तानी क़ैदी थे वहां ले गये। अतएव मुझे पूर्वोक्त विषय में गवर्नर से कहने सुनने का प्रसंग न मिला। तथापि मेरे मन में यह ख़्याल बना हुआ है कि इस बात का आन्दोलन करूं कि इस तरह हिन्दुस्तानी क़ैदी काफ़िरों के साथ न रक्खे जांय। जब मैं गया, तब कोई १५ क़ैदी वहां थे। तीन को छोड़ कर सब सत्याग्रही थे। तीन आदमी और अपराधों के अपराधी थे। वे काफ़िरों के साथ रक्खे जाते थे। जब मैं गया, बड़े दारोग़ा ने हुक्म दिया कि

हम सब के लिए जुदी कोठरी दी जाय । मैंने खेद के साथ देखा, कितने ही हिन्दुस्तानी काफ़िरों के साथ मज़े में सोते हैं, क्योंकि उन्हें वहां चोरी से लुक छिप कर तम्बाकू मिल जाती थी। यह हमारे लिए शर्म की बात है । हमें काफ़िरों अथवा और लोगों से घृणा नहीं, परन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि उनके और हमारे साधारण व्यवहार में एकता नहीं । फिर भी जो लोग उनके पास सोना चाहते हैं, वे और ही अभिप्राय से ऐसा करते हैं। अतएव यदि ऐसा भाव हमें उत्तेजित करे तो हमें उसको हृदय में स्थान न देना चाहिए।

जोहान्सबर्ग की जेल में एक और दुखद अनुभव मुझे हुआ। वहां के दो विभाग और ही ढंग के हैं। एक विभाग में काफ़िर तथा हिन्दुस्तानी सख़्त क़ैद की सज़ा के क़ैदी रहते हैं । दूसरे विभाग में सादी क़ैद वाले बन्द किये जाते हैं। सख़्त क़ैद की सज़ा वाले क़ैदी को उसमें जाने का अधिकार नहीं। हम दूसरे विभाग में सोते थे परन्तु दूसरे विभाग का पाख़ाना वग़ैरह काम में लाने का हमें अधिकार न था। पहले विभाग के पाख़ाने में तो इतने ज़्यादा क़ैदी हो जाते हैं कि उनमें पाख़ाने बैठने की उन्हें बड़ी दिक़्क़त रहती है। कितने ही हिन्दुस्तानियों को इससे बड़ा दुःख होता है। उनमें एक मैं भी हूं। दारोग़ा ने मुझसे कहा था कि दूसरे विभाग़ के पाख़ानों में जाने में हर्ज नहीं। इस से मैं वहां गया। इस पाख़ाने में भी भीड़ होती है। पाख़ाने खुले हुये हैं। उनमें दरवाज़े नहीं होते। ज्योंही मैं बैठा, एक लम्बा चौड़ा हट्टा-कट्टा विकराल काफ़िर आया और मुझसे उठजाने को कहा तथा लगा गालियां देने। मैंने कहा, अभी उठता हूं। इतने में उसने मुझे हाथ पकड़ कर उठाया और बाहर

फेंक दिया। सौभाग्य से मैंने चौकट पकड़ ली जिससे मैं गिरा नहीं। मैं घबड़ाया नहीं। हंसकर चलता बना परन्तु जिन एक दो हिन्दुस्तानियों ने यह माजरा देखा वे रो उठे। जेल में वे सहायता तो कर नहीं सकते थे, हां, अपने को निरुपाय समझ कर उन्हें रञ्ज अवश्य हुआ। पीछे मुझे मालूम हुआ कि अन्य हिन्दुस्तानियों को भी इसी तरह के दुःख भोगने पड़ते हैं। इस विषय पर मैंने गवर्नर से बातचीत की और कहा कि हिन्दुस्तानी क़ैदियों के लिए जुदे पाख़ाने की ज़रूरत है। मैंने उनसे यह भी कहा कि काफ़िर क़ैदियों के साथ हिन्दुस्तानी क़ैदी कदापि न रक्खे जांय। गवर्नर ने तुरन्त हुक्म दिया कि बड़ी जेल के छः पाख़ाने हिन्दुस्तानी क़ैदियों के लिए अलग कर दिये जांय। तब जाकर कहीं दूसरे दिन से पाख़ाने की तकलीफ़ मिटी। मैं ख़ुद चार दिनों तक पाख़ाने न गया था इससे तबीयत भी ख़राब हो गई थी।

जोहान्सबर्ग में रहते हुए मुझे तीन चार बार अदालत में जाना पड़ा था। वहाँ मिस्टर पोलक तथा मेरे पुत्र को मिलने की इजाज़त मिली थी। और लोग भी कभी कभी मिल जाया करते थे। मुझे घर से भोजन मंगाने की भी इजाज़त अदालत से मिल गई थी। इससे रोटी, पनीर (Cheese) इत्यादि चीज़ें मेरे लिए मिस्टर केलेनबेक लाते थे।

मेरे इस जेल में रहते हुये सत्याग्रही क़ैदी बहुत बढ़ गये थे। एक बार तो पचास से भी ज़्यादा हो गये थे। बहुतों को तो एक पत्थर पर बैठ कर छोटी हथौड़ी से बारीक कङ्कड़ी तोड़ने का काम सौंपा गया था। कोई दस आदमी फटे कपड़े सीने के काम में लगाये गये थे। मुझे मैशीन

से टोपी सीने का काम दिया गया था। मैंने मशीन का काम पहिले पहिल यहीं सीखा। काम मुश्किल न था इस से सीखने में कुछ भी देर न लगी। अधिकांश हिन्दुस्तानी कङ्कड़ी तोड़ने में लगाये गये थे। इस कारण मैंने भी वही काम चाहा। परन्तु दारोगा ने कहा है कि, 'मुझ से बड़े दारोगा ने कहा है कि तुम्हें बाहर न निकालूं।' उसने मुझे पत्थर तोड़ने जाने की इजाज़त न दी। एक दिन ऐसा हुआ कि मेरे पास मशीन का अथवा दूसरा सीने का काम न था, अतः मैं पुस्तकें पढ़ने लगा। नियम यह है कि प्रत्येक क़ैदी को जेल का कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिये। सो दारोगा ने मुझे बुलाया और पूछा—"क्या आज तुम बीमार हो?"

मैंने जवाब दिया—"जी नहीं।"

प्र०—तो फिर काम क्यों नहीं करते हो?

उ०—मेरे पास जो काम था वह पूरा हो गया। मैं काम का ढोंग करना नहीं चाहता। काम दीजिये तो मैं करने को तैयार हूँ। बेकाम बैठने से पढ़ने में क्या हर्ज है?

प्र०—यह तो सच है, लेकिन जब बड़ा दारोगा या गवर्नर आवे तब तुम स्टोर में रहो तो अच्छा है।

उ०—मैं ऐसा करने के लिये तैयार नहीं। मैं तो गवर्नर से भी कहनेवाला हूं कि मेरे लिये स्टोर में पूरा काम नहीं। इस से मुझे कङ्कड़ी तोड़ने भेज दीजिये।

प्र०—यह तो बहुत अच्छा है। पर मैं तो बिना इजाज़त कङ्कड़ी तोड़ने नहीं भेज सकता न!

इस घटना के थोड़ी देर बाद गवर्नर आये। मैंने उन्हे सब हाल कह सुनाया। उन्होंने कङ्कड़ी तोड़ने जाने की इजा-

ज़त न दी और कहा कि, तुम्हें वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि दूसरे ही दिन तुम्हें वोकसरस्ट जाना होगा।

डाक्टरी जांच—और नंगे क़ैदी।

वोकसरस्ट का क़ैदख़ाना छोटा था। इस कारण कितनी ही रियायतें जो यहां मिलती हैं; जोहान्सबर्ग की बड़ी जेल में नहीं मिलतीं। उदाहरण के लिए वोकसरस्ट की जेल में मिस्टर दाऊद मुहम्मद को सर पर बांधने के लिए साफ़ा तथा औरों को तो पाजामे भी पहिनने को दिये जाते थे। रुस्तमजी, मि० सोराबजी तथा मि० शापुरजी को अपने निज की टोपी पहनने को दी जाती थी। पर जोहान्सबर्ग की जेल में यह भी मुश्किल था। जोहान्सबर्ग की जेल में जब क़ैदी पहिले पहिल दाख़िल होता है, डाक्टर उनका मुलाहज़ा करते हैं। इस मतलब से कि किसी क़ैदी को अगर कोई छुआ-छूत का रोग हो तो उसकी दवा की जाय और दूसरे क़ैदी से अलग रक्खा जाय। इसलिए क़ैदियों की जांच लगातार की जाती है। कितने ही क़ैदियों को आतशक, खुजली, इत्यादि बीमारियां होती हैं। अतएव उनकी गुप्त इन्द्रियां जांची जाती हैं। क़ैदी बिल्कुल नङ्गे देखे जाते हैं। काफ़िरों को तो १५ मिनट तक बिल्कुल नङ्गा खड़ा रखते हैं, ताकि डाक्टर का समय बच जाय। हिन्दुस्तानी क़ैदियों के जांघिये तभी खोले जाते हैं जब डाक्टर आते हैं, और लोगों के कपड़े पहले ही से उतरवा लिये जाते हैं। प्रायः सभी हिन्दुस्तानी जांघिया खोलने की अनिच्छा प्रकट करते हैं। तथापि कितने ही तो सत्याग्रह की लड़ाई के लिहाज़ से आनाकानी नहीं करते, परन्तु मन में दुखी अवश्य होते हैं।

इस विषय पर मैंने डाकृर से कहा, उन्होंने कितने ही क़ैदियों को अलग स्टोर में जांचा, परन्तु सदा के लिए ऐसा करने से इन्कार किया। एसोसिएशन ने इस बारे में लिखा-पढ़ी की है और मामला अभी चल रहा है। इस विषय की शिकायत करना उचित है। जो रिवाज बहुत पुराना है उसे एकाएक न बदलना चाहिए। तथापि यह विषय है विचार करने लायक़। पुरुषों में ही अवयव—इन्द्रियां - छिपाने की ज़रूरत नहीं। फिर यह कहना तो अकारण है कि दूसरा आदमी हमारे गुप्त अवयव घूर कर देखेगा। झूठी शरम करने का कोई कारण नहीं। हम स्वयं यदि निर्दोष मन के हों, तो प्रकृति की दी हुई चीज़ को ख़ास तौर पर छिपाने की आवश्यकता नहीं। मैं जानता हूं कि ये विचार भारतीय मात्र को विचित्र मालूम होंगे। तथापि मेरे कथन पर गहरा विचार करने की ज़रूरत है। इस क़िस्म की आपत्तियां करने से हमें लड़ाई में हानि होगी। पहले हिन्दुस्तानी क़ैदियों की जांच बिल्कुल न होती थी। लेकिन एक बार दो तीन हिन्दुस्तानियों ने कह दिया कि, हमें तो कोई बीमारी नहीं है, पर असल में थे वे रोगग्रस्त। डाकृर को संदेह हुआ और उसने जब उन्हें जांचा तब वे झूठे निकले। तब से डाकृर ने हिन्दुस्तानियों को भी जाचने का ठहराव कर दिया। इस से आप जान सकते हैं कि जब हम पर कोई आफ़त आ पड़ती है तो उसका कारण अधिकांश में हम स्वयं ही होते हैं।

जोहान्सबर्ग से वापसी।

ऊपर कहे अनुसार ४ नवम्बर को मैं फिर वोकसरस्ट वापस आया। उस वक़् भी मेरे साथ एक दारोग़ा था। मेरी

पोशाक क़ैदी की थी। इस बार मुझे पैदल नहीं, गाड़ी में रेलवे स्टेशन पर लिवा ले गये। परन्तु दूसरे दरजे की जगह टिकट था तीसरे दरजे का। रास्ते के लिए मुझे आधा पौंड रोटी तथा बीफ़ (गो-मांस) खाने के लिए मिला। गो-मांस लेने से मैंने इन्कार कर दिया। तब दारोग़ा ने रास्ते में मुझे दूसरी खाने की चीज़ें लेने की इजाज़त दी। मैं स्टेशन पर आया, तो वहां कितने ही हिन्दुस्तानी दरज़ी मिले। उन्होंने मुझे देखा। बातचीत तो कर सकते थे नहीं; मेरी पोशाक देखकर कितनों ही को रुलाई आ गई। मुझे पोशाक इत्यादि के विषय में कुछ बुरा भला कहने का अधिकार नहीं था। अतएव मैं चुपचाप देखता रहा। मैं और दारोग़ा दोनों एक अलाहदा डब्बे (गाड़ी) में बैठे। हमारे पास की गाड़ी में एक दरज़ी भी था। अपने भोजन में से उसने मुझे कुछ खाने को दिया। हेडलबर्ग में मिस्टर सोभाभाई पटेल मिले। स्टेशन से उन्होंने कुछ खाने को ला कर दिया। जिस देवी से उन्होंने कुछ खाने को लिया उसने सत्याग्रह की लड़ाई से अपनी सहानुभूति दिखाने के विचार से दाम न लेना चाहा, परन्तु जब मिस्टर सोभाभाई ने बहुत ही इसरार किया, तब उसने नाममात्र के लिए छः पेनी ले ली। मि० सोभाभाई ने स्टांडर-टन को तार दे दिया था, इस से वहां भी कितने ही हिन्दु-स्तानी स्टेशन पर आये थे और साथ ही खाने को भी लेते आये थे। रास्ते में मैंने और दारोग़ा ने खूब डट कर भोजन किया।

वोकसरस्ट पहुंचते ही स्टेशन पर मिस्टर नगदी तथा मि० क़ाज़ी मिले। वे हम दोनों के साथ थोड़ी दूर तक चले। उन्हें दूर ही दूर चलने की इजाज़त मिली थी। स्टेशन से फिर

मुझे सामान उठा कर चलना पड़ा था। इस बारे में भी अख़बारों में ख़ूब चर्चा चली थी। वोकसरस्ट में मुझे फिर आया देख कर सब हिन्दुस्तानी प्रसन्न हुए। उस रात को मैं मि० दाऊद मुहम्मद की कोठरी में बन्द किया गया था। बहुत रात गये तक हम दोनों एक दूसरे को अपनी अपनी बीती सुनाते रहे।

हिन्दुस्तानी क़ैदियों का दृश्य।

जब मैं वोकसरस्ट वापस गया तब हिन्दुस्तानी क़ैदियों का चेहरा बदल गया था। ३० के बजाय ७५ क़ैदी हो गये थे। इस जेल में इतनी जगह न थी कि इतने क़ैदी रह सकते। अतएव ८ डेरे लगाये गये थे। रसोई के लिए ख़ास चूल्हा प्रिटोरिया (ट्रांसवाल) से आया था। कारागृह के पास ही नदी बहती है। क़ैदी उसमें स्नान कर सकते थे। उस समय वे क़ैदी न मालूम होते थे, बल्कि सिपाही जान पड़ते थे। वह क़ैदख़ाना न था, सत्याग्रहियों की छावनी थी। फिर दारोग़ा चाहे दुख दें चाहे सुख, इससे हमें क्या सरोकार। वास्तव में तो अधिकांश दारोग़ा, समष्टिरूप से, भलेमानुस ही थे। हर एक दारोग़ा का कुछ न कुछ नाम मि० दाऊद मुहम्मद ने रख दिया था। किसी का नाम "ब-कली" तो किसी का नाम "मफूटो" इस तरह उन्होंने उन सब के जुदे जुदे नाम रक्खे थे।

मेली-मुलाक़ाती।

वोकसरस्ट की जेल में मुलाक़ात करने के लिए बहुत हिन्दुस्तानी आते थे। मि० क़ाज़ी तो हमेशा आया करते। क़ैदियों के मनबहलाव की तजवीज़ वे ख़ूब करते। जहाँ तक

उनसे बन पड़ता वे मिलने आनेवालों को भी मौक़ा प्राप्त करा दिया करते। मि० पोलक प्रायः हर हफ़्ते काम से मिलने आया करते थे। नेटाल से मि० मुहम्मद इब्राहीम तथा मि० खरसानी कांग्रेस की मेन लाइन के चन्दे के लिए ख़ास तौर पर आये थे। ईद के दिन तो कोई १०० हिन्दुस्तानी नेटाल के सेठियों से मिले थे। उस दिन तारों की भी मानो वर्षा हुई थी।

फुटकर विचार।

जेल में साधारण तौर पर बहुत स्वच्छता रक्खी जाती है। यदि ऐसा न हो तो बीमारियों के बढ़ने में देर न लगे। तथापि कितनी ही बातों में गन्दगी भी देखी जाती है। ओढ़ने के कम्बल एक दूसरे से हमेशा बदल जाते हैं। चाहे जैसे मैले काफ़िर का ओढ़ा हुआ कम्बल हिन्दुस्तानी के हिस्से में आ जाता है। उनमें प्रायः लीखें पड़ जाती हैं और बदबू निकला करती है। क़ानून के अनुसार तो जब २ धूप निकले तब २ हमेशा आधे घन्टे तक उन्हें सुखाना चाहिए। परन्तु ऐसा शायद ही कभी किया गया हो। सफ़ाईपसन्द आदमी के लिए यह गड़बड़ साधारण बात नहीं। पहनने के कपड़ों की भी दशा बहुत बार ऐसी ही हो जाती है। क़ैदियों के छूटते वक़्त उनके बदन के कपड़े हमेशा धोये नहीं जाते। वे वैसे ही मैले नये क़ैदियों को पहना दिये जाते हैं। यह बात बड़ी घिनौनी है।

क़ैदी जेल में खचाखच धांदे जाते थे। जोहान्सबर्ग में जहां २०० क़ैदियों की गुन्जाइश थी, वहां ४०० ठूसे गये। एक कोठरी में क़ानून की निर्दिष्ट संख्या से दूने क़ैदी बहुत बार बन्द किये जाते थे और कभी २ उन्हें काफ़ी कम्बल तक

नहीं मिलते थे ! यह तकलीफ़ ऐसी वैसी तकलीफ़ नहीं । परन्तु प्रकृति का नियम कुछ ऐसा है कि बे-क़सूर मनुष्य जिस स्थिति में आ पड़ता है, उस में उसकी रक्षा वह खूब करती है । हिन्दुस्तानी क़ैदियों का भी यही हाल था । पूर्वोक्त सब्ती विपद् में भी हिन्दुस्तानी प्रसन्न रहते और मिस्टर दाऊद मुहम्मद तो दिन भर खुशदिल रहते । यही नहीं वे हँसी-मज़ाक़ कर के सारे हिन्दुस्तानी क़ैदियों को हँसाया करते थे ।

जेल में दुःख की बात तो यह देख पड़ी कि एक बार कितने ही हिन्दुस्तानी बैठे हुए थे । एक काफ़िर दारोग़ा आया उसने थोड़ी सी घास छीलने के लिए दो हिन्दुस्तानी मांगे । थोड़ी देर तक कोई न बोला । तब मि० इमाम अब्दुल-क़ादिर जाने के लिए तैयार हुए । तिस पर भी उनके साथ जाने को कोई न निकला । सब दारोग़ा से कहने लगे कि ये हमारे इमाम हैं । इन्हें मत ले जाओ । ऐसा कहने से दूनो ख़राबी हुई । अव्वल तो हर एक को घास छीलने को तैयार होने की ज़रूरत थी । सो तो एक ओर रहा । परन्तु जब अपनी जाति का नाम रखने के लिए इमाम साहब तैयार हुये तब उनकी पद-प्रतिष्ठा ज़ाहिर कर दी । वे तो घास छीलने को तैयार हो गये, पर और कोई न हुआ, मानों यह दिखा कर उन्होंने अपनी बेशर्मी प्रकट की !

धर्म-संकट ।

मैंने आधी ही सज़ा भोगी होगी कि फ़िनिक्स से तार आया कि श्रीमती गांधी बीमार हैं । वे मृत्यु-शय्या पर पड़ी हैं, इसलिए मुझे जाना चाहिए । इस ख़बर से सब को दुःख हुआ । मैं दुविधा में पड़ गया कि इस समय मेरा कर्तव्य

क्या है। जेलर ने पूछा कि —"तुम ज़ुर्माना दाख़िल करके जाना चाहते हो या नहीं ?" मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि—"ज़ुर्माना तो मैं किसी हालत में भी नहीं दे सकता। सगे-सम्बन्धियों से बिछोह होना भी हमारी सत्याग्रह की लड़ाई का एक अङ्ग है।" यह सुन कर जेलर हँसा और रञ्जीदा भी हुआ। साधारण तौर पर मेरा यह विचार निष्ठुर जान पड़ता है। तथापि मुझे तो निश्चय है कि यह सच्चा है—श्रेयस्कर है। स्वदेश-प्रेम को मैं अपने धर्म का एक अंग समझता हूं। इससे केवल यही नहीं कि स्वदेश-प्रेम में ही धर्म के सर्वांश का समावेश होता है, बल्कि यह कि स्वदेश-प्रेम के बिना धर्म की पूर्ति नहीं हो सकती। धर्म के पालन करने में यदि स्त्री, पुत्र का वियोग सहना पड़े तो उसे सहन करना चाहिए। परवा नहीं, यदि वे सदा के लिए हम से बिछुड़ जांय। इस में ज़रा भी निष्ठुरता नहीं। यह तो स्वदेश-प्रेमियों का कर्तव्य ही है। जब कि हमें मृत्यु के दिन तक लड़ना ही है तो फिर इसके सिवा दूसरा ख़याल हमारे दिल में पैदा न होना चाहिए। लार्ड राबर्ट्स ने अपना कर्तव्य पालन करते हुए उन दिनों, जब कि उनका काम प्रायः पूरा हो चुका था, अपने इकलौते लड़के की मृत्यु का समाचार सुना और उसे दफ़न करने में वे शरीक भी न हो सके, क्योंकि वे लड़ाई में लगे हुए थे। ऐसे उदाहरणों से संसार का इतिहास भरा पड़ा है।

काफ़िरों के झगड़े।

जेल में कितने ही बड़े बड़े ख़ूनी काफ़िर क़ैदी थे। उन में हमेशा लड़ाई-झगड़े हुआ करते थे, कोठरियों में बन्द किये जाने पर भी वे लड़ाई किया करते थे। कभी २

से दारोग़ा का भी सामना कर बैठते थे। क़ैदियों ने दो बार दारोग़ा को पीटा भी। ऐसे क़ैदियों के साथ हिन्दुस्तानी क़ैदियों को रखने से जो ख़तरा हो सकता है वह साफ़ ही ज़ाहिर है। ग़नीमत है कि हिन्दुस्तानियों पर वैसी नौबत अभी तक नहीं आई। परन्तु जब तक सरकारी क़ानून कहता है कि काफ़िरों में हिन्दुस्तानी क़ैदियों की भी गिनती की जाय तब तक इस हालत को ख़तरनाक ही समझिये।

जेल में बीमारी।

जेल में अधिकांश क़ैदी ऐसे थे जिन्हें कोई ख़ास बीमारी न थी। मि० मावजी का हाल पहले ही लिख चुका हूं। मि० राजू नाम के एक तामिल (मदरासी) सज्जन थे। एक बार इन्हें सख़्त आमातिसार हुआ था, बहुत बेचैनी रही। इसका कारण इन्होंने यह बताया कि, उन्हें रोज़ ३० प्याले चाय पीने की आदत थी। जेल में चाय कहां, इसी से उन्हें इस रोग ने घर दबाया। उन्होंने चाय मिलने की कोशिश भी की, परन्तु मिली नहीं। उसके बदले दवा मिली, और जेल के डाक्टर ने २ पौंड दूध तथा रोटी देने की इजाज़त दी। इससे वे आराम हो गये। मि० रविकृष्ण तालेवन्त सिंह की तबियत आख़िर तक ख़राब रही। मि० क़ाज़ी और मिस्टर बावज़ीर अन्त तक रोगी रहे। मि० रतनसी सोढ़ा चातुर्मास व्रत रहते थे और एकाहारी थे। भोजन अच्छा न मिलने से वे भूखे रहते थे। परन्तु अन्त में वे भी अच्छे हो गये। इसके सिवा कितने ही लोगों को कुछ न कुछ बीमारी भोगनी पड़ी। तथापि मैंने देखा कि बीमारी में भी हिन्दुस्तानी पस्तहिम्मत न हुए। अपने देश के नाम पर वे इन कष्टों के लिए सदा तैयार रहे।

कुछ विघ्न बाधायें ।

यह देखने में आया कि बाहरी मुसीबतों की अपेक्षा भीतरी आपत्तियां अधिक दुःख देती थीं। वहां हिन्दू मुसलमान तथा ऊंच और नीच जाति के भेद-भाव की झलक भी कभी कभी देख पड़ती थी। वहां सभी जातियों और सभी श्रेणियों के हिन्दुस्तानी रहते थे। उनके रंग-ढंग से यह जाना जा सकता था कि, हम स्वराज्यप्राप्ति की राह में कितने पिछड़े हुए हैं। तथापि यह भी देखा गया कि यह कोई ऐसी बात नहीं जिसके कारण हम स्वराज्य का संचालन न कर सकें, क्योंकि जितनी विघ्न बाधायें उपस्थित हुईं वे अन्त में दूर भी हो गईं।

कितने ही हिन्दू कहते थे कि, हम मुसलमानों के हाथ का खाना न खांयगे, फ़लां आदमी के हाथ का न खांयगे। ऐसा कहने वाले आदमियों को तो हिन्दुस्तान के बाहर क़दम ही नहीं रखना चाहिए। गोरे या काफ़िर भी हमारे खाने से छू जांय तो हर्ज नहीं। एक बार एक आदमी ने ऐतराज़ किया कि, मैं फ़लां चमार के पास न सोऊंगा। यह भी हमारे लिए शर्म की बात है। पूंछ-तांछ करने पर मालूम हुआ कि वह मनुष्य भेद-भाव का तो क़ायल न था परन्तु उसने यह इसलिए चाहा था कि, कहीं देश में उसके सजातियों को यह बात मालूम हो गई तो वे ऐतराज़ करेंगे! मैं जानता हूं इस तरह के ऊंचनीच के ख़याल और जाति वालों के ज़ुल्म से डर कर हम सत्य को छोड़ कर असत्य का आदर करने लग गये हैं। यदि हम जानते हैं कि चमार का तिरस्कार करना ठीक नहीं, तो फिर जाति वालों तथा दूसरों से फ़जूल डर कर और सत्य को छोड़कर हम सत्याग्रही कैसे कहे जा सकते हैं? मेरी यह इच्छा है कि इस लड़ाई में शरीक होने वाले

हिन्दुस्तानी जाति, परिवार और अधर्म का मुक़ाबला करके सत्याग्रही बनें। हम ऐसा नहीं करते, इसी से हमारा आन्दोलन शिथिल है। मेरा तो यही निश्चय है। जब कि, हम सब हिन्दुस्तानी हैं तो झूठे भेद-भाव रख कर हम बढ़ बढ़ कर बातें बनावें और अधिकार मांगें, यह कैसे सम्भव है? अथवा "देश में हमारा क्या होगा" इस डर से हम सत्य का अवलम्बन न करें तो इस लड़ाई में हमें कैसे विजय प्राप्त होगी? डरकर किसी काम को छोड़ना तो कायरों का काम है। और कायर हिन्दुस्तानी इस महायुद्ध में सरकार के मुक़ाबले अन्त तक नहीं जूझ सकते।

जेल में कौन जा सकता है?

पूर्वोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि व्यसनग्रस्त, जाति पांति के झूठे भेद रखने वाले, झगड़ालू, हिन्दू-मुसलमान में ऊंच-नीच मानने वाले और रोगी आदमी न तो जेल में जा ही सकते हैं और न वे वहां अधिक दिन टिक सकते हैं। देशहित के नाम पर सन्मान मान कर जेल जाने वाले का शरीर, मन तथा आत्मा स्वस्थ, सशक्त होने चाहिए। रोगी आदमी अन्त में थक जाता है और हिन्दू-मुसलमान में ऊँच-नीच का बखेड़ा करने वाला तथा व्यसन में फँसने वाला, चाय, बीड़ी अथवा अन्य वस्तु के नाम पर बिक जाने वाला आख़िर तक नहीं ठहर सकता।

पढ़ाई।

दिन भर काम करें तो भी सवेरे शाम तथा रविवार के दिन पढ़ने को कुछ समय मिल सकता है। और जेल में अन्य झंझट न होने के कारण पढ़ भी मज़े से पाते हैं। बहुत थोड़ा समय मिलने पर भी रस्किन की दो प्रख्यात पुस्तकें,

थारो के निबन्ध, बायबिल के कुछ भाग, गैरीबाल्डी का जीवन-चरित्र (गुजराती में), लार्ड बेकन के निबन्ध (गुजराती में), हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में दो और पुस्तकें मैंने अंगरेज़ी में पढ़ीं। रस्किन तथा थारो के लेखों में स्थान स्थान पर सत्याग्रह भरा पड़ा है। मि० दिवान ने हम लोगों के लिए गुजराती पुस्तकें भेजी थीं। इसके सिवा भगवद्गीता प्रायः सदा ही पढ़ी जाती थी। इस पठन का परिणाम यह हुआ कि मेरा हृदय सत्याग्रह के विषय में अधिक पक्का हो गया और मैं कह सकता हूं कि जेल में ऐसी कोई बात नहीं जिससे जी ऊब उठे।

दो प्रकार के विचार।

ऊपर जो कुछ मैं लिख चुका हूं उस से दो प्रकार के ख़याल पैदा हो सकते हैं —

एक तो यह कि, जेल में जाकर बन्दी होना, मोटा खुरदरा और ख़राब कपड़ा पहनना, ख़राब खाना खाना, भूखों मरना, दारोग़ा की ठोकरें खाना, काफ़िरों में बैठना, पसन्द बे-पसन्द सब काम करना, हमेशा ऐसे दारोग़ा की टहल करना जो खुद हमारी नौकरी करने लायक़ है, अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से न मिल सकना, किसी को चिट्ठी न लिख सकना, आवश्यक वस्तु न पाना, खूनी और डाकुओं के साथ सोना—ये दुःख किस लिए उठावें? इससे तो मौत ही भली। जुर्माना देकर छूट जांय पर जेल न जांय। भगवान करे जेल में किसी को न जाना पड़े। ऐसे विचारों से मनुष्य का हृदय बिलकुल निर्बल हो जाता है, और वह जेल से डरने लगता है, तथा वहां जिस शुभ कार्य के लिए वह जाता है उसे नहीं कर पाता।

दूसरा ख़याल यह होता है कि देश-हित के नाम पर, मान-रक्षा के लिए, धर्म के निमित्त मुझे जेल जाना पड़े तो यह मेरे सौभाग्य का सूचक है। जेल में दुःख किस बात का? यहां तो मुझे बहुतों की ताबेदारी करनी पड़ती है। उसके एवज़ जेल में अकेले दारोग़ा की ही सेवा करनी पड़ती है। जेल में न मुझे किसी बात की चिन्ता, न खाने-कमाने की फ़िक्र। वहां तो लोग रोज़ वक़्त पर खाना पकाते हैं और शरीर की रक्षा स्वयं सरकार करती है। इन सब के लिए मुझे कुछ देना भी नहीं पड़ता। काम ऐसा मिलता है कि ख़ासा व्यायाम हो जाता है। सारे व्यसन सहज ही छूट जाते हैं। मन स्वतन्त्र रहता है। ईश्वर-भजन का लाभ सहज ही मिल जाता है। वहां शरीर मात्र बन्दी होता है और आत्मा तो अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। मैं नियम सेरोज़ उठता हूं। शरीर की रक्षा का भार उसी पर है, जिसने इसे बन्दी बनाया है। इस प्रकार हर तरह मैं आज़ाद हूँ। जब मुझ पर मुसीबत आती या पापी दारोग़ा मार-पीट कर बैठता है, तब मुझे धीरज रखने का अभ्यास होता है। मैं यह समझ कर ख़ुश होता हूं कि उनका सामना तो करना पड़ता है। ऐसे विचार से जेल पवित्र और सुखदायक मानना या बनाना तो अपने ही हाथ में है। मन की दशा विचित्र है। थोड़े ही में वह दुखी और थोड़े ही में वह सुखी हो जाता है। मुझे आशा है कि मेरी यह दूसरी कहानी पढ़ कर पाठक यही निश्चय करेंगे कि देश के लिए अथवा धर्म के नाम पर जेल जाना, वहां तकलीफ़ उठाना अथवा और तरह के सङ्कट सहन करना अपना कर्तव्य है। इसी में हमें सुख है।

मेरे जेल के अनुभव।

(तीसरी बार)

वोकसरस्ट।

२५ फ़रवरी को, जब मुझे तीन मास की सख़्त क़ैद की सज़ा मिली और मैं अपने क़ैदी भाइयों तथा अपने पुत्र से वोकसरस्ट की जेल में मिला तब मुझे आशा नहीं थी कि इस तीसरी बार की जेल-यात्रा के विषय में मुझे कुछ कहने सुनने वा लिखने की ज़रूरत होगी। परन्तु मेरी वह धारणा मनुष्य की अन्य अनेक धारणाओं की तरह असत्य सिद्ध हुई। इस बार मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ वह पिछले अनुभवों से निराला है। उस से मुझे जो जो शिक्षायें मिलीं वे वर्षों के परिश्रम और अभ्यास से भी नहीं मिल सकतीं। मैं इन महीनों को अमूल्य समझता हूं। इस थोड़ी ही अवधि में मैंने सत्याग्रह के कितने ही चित्र हूबहू देखे और मैं अपने को २५ फ़रवरी से पहिले की अपेक्षा अब अधिक बलवान सत्याग्रही समझता हूं। इसके लिए मुझे ट्रांसवाल की सरकार का कृतज्ञ होना चाहिए।

कितने ही अधिकारियों को भी निश्चय सा था कि इस बार मुझे ६ मास से कम की सज़ा न मिलेगी। मेरे साथी —वृद्ध और प्रसिद्ध भारतवासी—मेरा पुत्र, ये सब ६ मास की क़ैद भोग रहे थे। अतएव मैं भी यही मनाता था कि भगवान् करें, अधिकारियों की आशा पूरी हो। लेकिन अभियोग

मुझ पर क़ानून की दफ़ा की रू से लगाया गया था। इससे मुझे डर था कि ३ ही मास की सज़ा मिलेगी और ऐसा ही हुआ भी।

क़ैद की सज़ा मिलने पर मैं मिस्टर दाऊद मुहम्मद, मि० रुस्तम जी, मि० सोराब जी, मि० पिल्ले, मि० हज़ूरा-सिंह, मि० लालबहादुर सिंह इत्यादि सत्याग्रहियों से बड़े हर्षपूर्वक मिला। कोई १० क़ैदियों को छोड़ कर बाक़ी सब के लिए जेल के मैदान में डेरों में सोने का प्रबन्ध था। इससे वहां का दृश्य जेल की अपेक्षा लड़ाई की छावनी का सा ही अधिक देख पड़ता था। डेरों में सोना सब को पसन्द आया। वहाँ खाने का भी आराम था। रसोई बनाना पहिले की तरह हमारे ही सिपुर्द था। इस से मनमाने ढंग से खाना पाते थे। हम सब मिला कर ७७ सत्याग्रही क़ैदी थे। और काम जो कुछ किसी को दिया जाता था, वह, आसान और कम था। मैजिस्ट्रेट की कचहरी के सामने वाली सड़क बनानी थी। उसके लिए पत्थर, कंकड़ी आदि खोदने और बराबर जमाने पड़ते थे। इसके बाद मदरसे के मैदान में घास छीलनी पड़ती थी। परन्तु लोग खूब मज़े में और आसानी से काम करते थे।

यों तीन दिन तक मैं भी स्पेन टोली के जमादार के साथ काम पर गया था। किन्तु बीच ही में तार आ गया कि मैं बाहर कार्य के लिए न भेजा जाऊं। मैं निराश हो गया; क्योंकि मुझे बाहर जाना पसन्द था। इस से मेरा स्वास्थ्य सुधरता था और बदन गठीला होता था। साधारणतः मैं हमेशा दो बार भोजन करता हूं। परन्तु वोकसरस्ट की जेल में काम के श्रम के कारण शरीर दो के बजाय तीन बार खाना

मांगता था। झाड़ू देने का काम मिला। इस काम से दिन मुश्किल से कटता था। परन्तु इस काम के भी छूटने का वक़्त आ गया।

वोकसरस्ट क्यों छूटा ?

दूसरी मार्च को ख़बर मिली कि, मुझे प्रिटोरिया (ट्रांसवाल) भेजने का हुक्म है। उसी दिन मेरी तैयारी की गई। पानी बरस रहा था। राह-बाट ख़राब थी। इस दशा में भी मुझे अपनी गठरी उठा कर जाना पड़ा। दारोग़ा साथ था। शाम की ट्रेन से तीसरे दरजे की गाड़ी में वह मुझे लिवा ले गया।

कितने ही लोगों को, इस घटना से, यह ख़याल हुआ कि मामला ठण्ढा हुआ चाहता है। कुछ लोगों ने समझा कि मुझे अलग ले जाकर अधिक कष्ट देने का विचार है। और बहुतों ने तो यह भी विचार किया कि हो न हो, इस हेतु से कि, सर्वसाधारण की सभा में चर्चा न हो, इन्हें प्रिटोरिया में रख कर अधिक सहूलियत देने और अधिक रिआयत करने के लिए ले गये हैं।

वोकसरस्ट छोड़ना मुझे अच्छा न लगा, वहां हम दिन में जिस तरह आनन्द से रहते थे, रातमें भी बातचीत—क़िस्से कहानी—कह कर आराम से रहते थे। मि० हजूरासिंह तथा मि० जोशी ये दो सज्जन तो ख़ास कर बहुत ही सम्भाषण किया करते। उन के सवाल जवाब भी व्यर्थ के न हुआ करते थे, ज्ञान-ध्यान की बातें उन में भरी रहती थीं। जहाँ दिन रात इस प्रकार सुख-चैन से गुज़रते थे और जहां अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी क़ैदियों की छावनी थी, वहां से चला आना किस सत्याग्रही को अच्छा लग सकता है? परन्तु, यदि

मनुष्य की इच्छा के अनुसार काम होते हों तो फिर वह आदमी न कहा जाय। मैं तो चल दिया। रास्ते में मि० क़ाज़ी से दुआ-सलाम करके मैं और दारोग़ा गाड़ी में घुसे। जाड़ा पड़ रहा था। सारी रात पानी बरसा। मुझे ओढ़ना ओढ़ने की इजाज़त मिली। इससे कुछ आराम मिला। जाड़ा रुका। खाने के लिए मेरे साथ रोटी और पनीर (Cheese) दिया गया था। मैं तो खा कर चला था, इसलिए वह दारोग़ा के काम आया।

प्रिटोरिया की जेल में शुरूआत।

तीसरी तारीख़ को प्रिटोरिया पहुंचा। वहां मुझे सब कुछ नया मालूम हुआ। जेल भी नई बन गई थी। आदमी भी नये। मुझसे खाने को कहा गया, परन्तु मेरी तो इच्छा ही न थी। तब "मीलीमिल" का "पोरीज़" मेरे आगे रख दिया गया। मैंने एक चमचा भर चखकर उसे हटा दिया। यह देखकर दारोग़ा को अचरज हुआ। मैंने कहा मुझे भूख नहीं। वह हँसा। इसके बाद मैं दूसरे दारोग़ा की हिरासत में रक्खा गया। उसने कहा, "गांधी, टोपी उतार"। मैंने टोपी उतार ली। फिर उसने पूंछा—"तू गांधी का लड़का है?" मैंने कहा—"नहीं, मेरा लड़का तो वोकसरस्ट में छः महीने की क़ैद भोग रहा है।" तब मैं एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। वहां मैं घूमने-टहलने लगा। थोड़ी देर में दारोग़ा ने दरवाज़े के पास वाले सूराख़ से झांक कर मुझे चलता-फिरता हुआ देखा। उसने कहा—"गांधी तू घूम मत। एक जगह बैठा रह, फ़र्श ख़राब होती है।" मैंने टहलना बन्द कर दिया। एक कोने में खड़ा होगया। पास पढ़नेके लिए भी कुछ न था। मेरी किताबें

मुझे मिली नहीं थी। कोई ८ बजे मुझे बन्द किया था। दस बजे डाक्टर के पास लिवा ले गये। डाक्टर ने मुझसे यह पूछकर कि तुम्हें कोई छूत की तो बीमारी नहीं है, रवाना कर दिया। मैं फिर बन्द कर दिया गया। ११ बजे मुझे एक दूसरी छोटी कोठरी में ले गये। वहां मैं बहुत देर तक रहा। ऐसी कोठरियां एक एक आदमी के लिए बनाई गई हैं। उनकी लम्बाई चौड़ाई कोई १० × ७ फ़ीट होगी। फ़र्श काला है, अल्कतरा पुता हुआ है। उसकी चमक-दमक बनाये रखने के लिए दारोग़ा कोशिश किया करते हैं। हवा और प्रकाश के लिए कांच की और लोहे के सीकचे वाली बहुत ही छोटी २ खिड़कियां हैं। क़ैदियों को रात में देखने भालने के लिए बिजली की बत्तियां रहती हैं। बत्तियां क़ैदी के सुभीते की नहीं, क्योंकि उनसे इतनी रोशनी नहीं होती कि पढ़ा जा सके। बत्ती के पास जाकर जब मैं खड़ा रहता तब बड़े अक्षरों की पुस्तक पढ़ सकता था। बत्ती ठीक आठ बजे बुझा दी जाती है। पर रात में कोई पांच छः बार जलाई जाती है और उसके उजियाले में दारोग़ा उस सूराख़ से झांक कर क़ैदियों को देख जाया करता है।

११ बज जाने के बाद डिपुटी-गवर्नर आये। उनसे मैंने तीन बातें कहीं। एक तो किताबों की मांग, दूसरी मेरी स्त्री की बीमारी के कारण उसे पत्र भेजने की इजाज़त और तीसरे बैठनेके लिए एक बेञ्च। पहली का उत्तर "विचार करूंगा" दूसरी का उत्तर—"चिट्ठी लिखना" तीसरी का उत्तर "नहीं" मिला। मैंने गुजराती में पत्र लिखा। उस पर उसने रिमार्क लिखा कि आयन्दा अंगरेज़ी में चिट्ठी लिखी जाय। मैंने कहा मेरी पत्नी अंगरेज़ी नहीं जानती। मेरी चिट्ठी उसके लिए दवा का काम

देती है। कोई नई अथवा विशेष बात तो मुझे लिखनी थी नहीं, तथापि अनुमति न मिली। अंगरेज़ी में लिखने की आज्ञा से लाभ उठाने से मैंने इनकार कर दिया। उसी दिन शाम को मुझे मेरी किताबें भी मिल गईं।

दोपहर को खाना खाया। बन्द कोठरी में खड़े खड़े ही खाना खाना पड़ा। कोई तीन बजे मैंने स्नान करने की आज्ञा चाही। नहाने की जगह मेरी कोठरी से कोई १२५ फ़ीट के फ़ासिले पर थी। दारोग़ा ने कहा, "ठीक है, मगर कपड़े उतार कर नंगे हो कर जाओ।" मैंने कहा—इसकी क्या आवश्यकता? मैं अपने कपड़े परदे के ऊपर रख दूंगा। तब उसने इजाज़त दी और कहा कि देर मत लगाना। अभी मैं शरीर पोंछ भी न पाया था कि हज़रत ने पुकार मचा दी—"गांधी, तैयार हो गये?" मैंने कहा—अभी होता हूं। किसी हिन्दुस्तानी का मुंह तो वहां भाग्य ही से देखने को मिलता था। शाम को कम्बल, दोहर और चटाई सोने के लिए मिली। चौकी वग़ैरह न थी। पाख़ाने में भी दारोग़ा साथ रहता। वह मुझे जानता न था। इस लिए कहता—'साम' अब निकल! मगर "साम" को तो बड़ी देर तक पाख़ाने में बैठने की आदत थी; सो वह उठे कैसे? अगर उठे तो उसे काम अधूरा छोड़ना पड़े। कभी कभी दारोग़ा अथवा कोई काफ़िर ही इस तरह खड़ा रहता और "उठ—उठ" कह कर चिल्लाया करता।

काम दूसरे रोज़ मिला भी तो फ़र्श और दरवाज़े साफ़ करने का, अर्थात् उन्हें पालिश करने का। दरवाज़ों पर रोग़न चढ़ा हुआ था। वे थे भी लोहे के बने हुए। फिर उन पर और पालिश करने की क्या ज़रूरत? मैंने एक एक दर-

वाज़े को घिसने में तीन तीन घण्टे लगाये, पर मुझे तो उनमें कुछ भी फ़र्क़ न देख पड़ा। हां, फ़र्श में अलबत्ता कुछ रूपान्तर दिखाई दिया। मेरे साथ काफ़िर भी काम करते थे। वे अपनी सज़ा की कहानी टूटी-फूटी अंगरेज़ी में कहते और मुझ से अपनी सज़ा का हाल पूछते जाते थे। कोई पूछता था, क्या तूने चोरी की है? और कोई पूछता, क्या यहां शराब बेंचने आया है? उनका थोड़ा बहुत आशय समझ लेने पर जब मैं उन्हें अपनी कथा कहता तब वे कह उठते —"क्वाइट राइट" (अच्छा किया)। "अमलु गुबेड़" (गोरे ख़राब हैं)। "डोन्ट पे फ़ाइन" (जुरमाना न दाख़िल करना)। मेरी कोठरी पर लिखा था 'आबस्ते लेटेतु' (एकान्त-बास कालकोठरी)। मेरी कोठरी के पास ही पांच और कोठरियां वैसी ही देखने में आईं। मेरा पड़ोसी एक काफ़िर था। वह ख़ून के प्रयत्न करने का अपराधी था। उसके पीछे तीन और काफ़िर थे। उन पर सृष्टि-विरुद्ध व्यभिचार करने का अपराध प्रमाणित हुआ था। ऐसे साथियों के बीच ऐसी स्थिति में मैंने प्रिटोरिया के जेलख़ाने में अनुभव प्राप्त करना आरम्भ किया।

भोजन।

ऊपर लिखी दशा के अनुसार ही भोजन भी था। सबेरे 'पू पू' दोपहर को तीन दिन 'पू पू' और आलू अथवा गाजर। तीन दिन बाल (बीन्स) और शाम को बिना घी के चावल। बुधवार की दोपहर को बाल (बीन्स) चावल, घी तथा रविवार को 'पू पू' के साथ चावल और घी मिलता था। बिना घी के चावल मुश्किल से खाये जाते थे। अतएव घी न मिलने तक चावल न खाने का मैंने निश्चय किया। सबेरे तथा दोपहर को 'पू पू' कभी तो कच्चा और कभी राब

की तरह ढीला होता था। बाल (बीन्स) भी कभी कभी कच्चे मिलते थे। तथापि साधारणतः बाल ठीक पकते थे। तरकारी के दिन छोटे छोटे चार आलू (ये आठ औंस समझे जाते हैं) और गाजर के दिन तीन नन्हीं २ गाजरें दी जाती थीं। कभी कभी सबेरे चार या पांच चमचा 'पू पू' मैं लेता परन्तु साधारण रीति से दो महीने मैंने दोपहर के भोजन पर बिताए। इस उदाहरण से वोकसरस्ट के हमारे क़ैदी भाइयों को जानना चाहिए कि जब हमारे ही भाई रसोई बनाते थे और कच्ची रह जाने पर उन पर वे क्रोध करते थे, यह उचित न था। वे देखें कि इस दशा मे, मैं किस पर ग़ुस्सा होता? हाँ, यह भी ऐतराज़ किया जा सकता है। पर मेरा ख़याल है कि ऐसी शिकायत हमें शोभा नहीं देती। जहां सैकड़ों क़ैदी सबर कर लेते हैं वहां शिकायत कैसी? शिकायत का उद्देश्य सिर्फ़ एक होना चाहिए। वह ऐसा हो कि और क़ैदी भी उसके क़ायल हों। कभी २ मैं दारोग़ा से कहता कि आलू थोड़े हैं तो वह और ला देता था। पर इस तरह कितने दिन कट सकते हैं? एक बार मैंने देखा कि दारोग़ा दूसरे के कटोरे में से मेरे लिए कुछ ला रहा है, तब से मैंने उससे कहना ही छोड़ दिया।

शाम को चावल में घी नहीं मिलता था, यह मुझे पहले से ही मालूम था और उस के इलाज करने की तदबीर भी मैंने सोच रक्खी थी। मैंने तुरन्त बड़े दारोग़ा पर यह बात प्रकट की। उसने कहा घी तो सिर्फ़ बुध तथा रविवार की दोपहर को मांस के बजाय ही मिल सकता है। अधिक बार दरकार हो तो डाक्टर से मिलो। दूसरे दिन मैंने डाक्टर से मिलने की दरख़्वास्त की। फलतः मैं उससे मिलने गया।

डाक्टर से मैंने निवेदन किया कि चरबी के बजाय हिन्दुस्तानी क़ैदियों को घी मिला करे। उस समय बड़ा दारोग़ा भी उपस्थित था। उसने कहा गांधी की मांग उचित नहीं। आज तक कितने ही हिन्दुस्तानी चरबी खा चुके हैं और मांस का भी भोजन कर चुके हैं। जो चरबी लेते हैं उन्हें सूखे चावल मिलते हैं। सब खुशी से खाते हैं। जब सत्याग्रही क़ैदी थे तब वे सब भी खाते थे। क़ैद में दाख़िल होते और क़ैद से रवाना होती दफ़े उनका वज़न किया गया था। छूटती बार उन सब का वज़न बढ़ गया था। डाक्टर ने पूछा—कहो, अब तुम्हारा क्या कहना है ? मैंने कहा - यह बात मुझे नहीं जँची। तथापि अपने विषय में तो मैं कहता हूं कि यदि मुझे बिल्कुल घी के बिना ही रहना पड़ेगा तो मेरी तबियत ज़रूर ख़राब हो जायगी। डाक्टर ने कहा, तो तुम्हारे लिए रोटी का हुक्म देता हूं। मैंने कहा—मैं कृतज्ञ हुआ, परन्तु मैंने ख़ास अपने लिए निवेदन नहीं किया है। जब तक सब लोगों को घी का हुक्म न मिले, मैं रोटी नहीं ग्रहण कर सकता। तब डाक्टर ने कहा—तो फिर मुझे दोष न देना।

अब क्या किया जाय ? बड़ा दारोग़ा अगर बीच में न बोलता तो हुक्म मिल जाता। उसी दिन मेरे आगे रोटी और चावल रक्खे गए। मैं भूखा था, पर सत्याग्रही इस तरह कैसे भोजन पा सकता है ? मैंने दोनों चीज़ें न लीं। दूसरे दिन मैंने डाइरेक्टर से अर्ज़ करने की इजाज़त चाही। इजाज़त मिल गई। मैंने उनके पास अर्ज़ी भेजी। उसमें मैंने जोहान्सबर्ग तथा वोकसरस्ट के उदाहरण देकर क़ैदियों के लिए घी मिलने की प्रार्थना की। इस अर्ज़ी का उत्तर १५ दिनों में मिला। वह यह था कि, हिन्दुस्तानियों के लिए जब तक दूसरे

प्रकार के भोजन की तजवीज़ न हो तब तक मुझे हर रोज़ चावल के साथ घी दिया जाय। मुझे ऐसी ख़बर न दी गई थी, इस कारण मैं ने पहले दिन चावल, घी, रोटी खुशी खुशी खाली। मैंने कहा कि रोटी की ज़रूरत नहीं। उत्तर मिला कि डाक्टर का हुक्म है, इस लिए रोटी तो मिलेगी ही। अतएव रोटी भी १५ दिनों तक ली। परन्तु मेरी खुशी एक ही दिन तक रही। दूसरे दिन मैंने जाना कि हुक्म तो ऊपर लिखे मुताबिक़ है। अतएव मैंने फिर से घी चावल और रोटी लेने से इनकार कर दिया। बड़े दारोग़ा से मैंने कहा कि, जब तक सब लोगों को घी न मिलेगा, मैं यह नहीं ग्रहण कर सकता। डिपुटी-गवर्नर भी उसके साथ थे। उन्होंने कहा, यह तुम्हारी इच्छा पर अवलम्बित है। मैंने फिर डिरेक्टर को लिखा। मुझे बतलाया गया था कि, भोजन नेटाल की तरह मिलेगा। मैंने उसकी आलोचना की, और मैं स्वयं घी इत्यादि नहीं ले सकता आदि बातें उस में लिखा दीं। अन्त में कोई डेढ़ महीने के बाद हुक्म आया कि जहां २ हिन्दुस्तानी क़ैदी अधिक हों, वहां २ घी मिला करे। इस तरह विजय प्राप्त करने पर डेढ़ मास बाद मेरे रोज़े (उपवास) छूटे। मैंने अन्त के कई मास तक चावल, घी और रोटी खाई। मैंने सवेरे भोजन करना बन्द कर दिया था और चावल रोटी लेना शुरू करने के बाद भी दोपहर को जब " पू पू " आता तो वह भी कभी कभी आठ-दस चम्मच ले लेता। 'पू पू' हमेशा तरह तरह से बनाया जाता था। रोटी तथा घी से मुझे काफ़ी तसल्ली मिल जाती थी। इससे तबियत भी दुरुस्त हो गई थी।

मैंने अभी ऊपर कहा है, कि मेरी तबियत दुरुस्त हो गई थी। इसका कारण यह था कि जब मैं एकाहारी हो रहा

था तब मेरी तबियत ख़राब हो गई थी, कमज़ोरी आ गई थी और कोई दस दिन तक मुझे सख़्त आधासीसी की बीमारी रही थी। आवेल तथा छाती के बिगड़ जाने के लक्षण जान पड़ने लगे थे।

काम की बदली।

छाती ख़राब होने का कारण इस तरह था। मैं ऊपर लिख चुका हूं कि मुझे फ़र्श तथा दरवाज़ा साफ़ करने का काम दिया गया था। कोई दस दिनों तक वह काम करने के बाद फटे हुए कम्बलों को सीकर जोड़ने का काम मिला। यह काम बारीक था। सारा दिन कमर झुका कर फ़र्श पर काम मरना पड़ता था। सो भी कोठरी में बैठ कर। इससे शाम को मेरी कमर दर्द किया करती। मेरी आंखों में भी दर्द हुआ करता। मेरी राय में कोठरी की हवा तो हमेशा ही ख़राब होती है। बड़े दारोग़ा से मैंने एक बार कहा भी कि मुझे बाहर खोदने इत्यादि के काम में लगा दीजिए और यह नहीं तो खुली हवा में कम्बल इत्यादि सीने दीजिए। पर उसने दोनों बातें नामंजूर कीं। इस बारे में भी मैंने डिरेक्टर को लिखा। अन्त में डाक्टर का हुक्म हुआ। यदि मुझे खुली हवा में काम करने की इजाज़त न मिलती तो मेरे ख़याल में मेरी तबियत अधिक ख़राब हो जाती। इस हुक्म के मिलने में कितनी ही अड़चनें दरपेश हुई थीं परन्तु उनके वर्णन की यहां ज़रूरत नहीं। इससे इतना तो हुआ कि मेरे भोजन में परिवर्तन हुआ और खुली हवा में काम करने का भी अवसर मिला। यों दोहरा लाभ हुआ। जब कम्बल बुनने का काम मिला तब मैंने सोचा था कि इस एक कम्बल के बुनने में एक हफ़्ता और लगेगा। तब तक मेरी अवधि समाप्त हो

जायगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत। पहला कम्बल बुनने के बाद तो मैं एक जोड़ी दो दिन में ही तैयार करने लगा। तब और काम भी अर्थात् बनीयान में ऊन भरना, टिकेट पाकेट सीना इत्यादि काम मिल गये।

मैंने बहुतेरे सत्याग्रहियों से कहा कि यदि तुम बीमार बनकर—स्वास्थ्य ख़राब करके—जेल के बाहर निकलोगे तो तुम्हारे सत्याग्रह की कमज़ोरी समझी जायगी। धीरज रख कर हम उचित उपाय का अवलम्बन कर सकते हैं। चिन्ता करने से भी स्वास्थ्य ख़राब होता है। सत्याग्रहियों को तो जेल को महल समझना चाहिए।

मैं इस विचार से बड़ा दुखी होता कि, क़हीं मुझे स्वयं न बीमार होकर जाना पड़े। पाठकों को याद रखना चाहिए कि मेरे लिए जो घी का हुक्म हो गया था उसकी चेष्टा न करता तो सत्याग्रह में मेरी तबीयत ख़राब हो जाती परन्तु औरों के लिए यह नियम लागू नहीं। प्रत्येक क़ैदी जब वह अकेला जेल में हो तो अपनी निजी शिकायत दूर करने की कोशिश कर सकता है। प्रिटोरिया में मेरे ऐसा न करने का ख़ास सबब था। इसी कारण मैं अपने अकेले के लिए घी का हुक्म नहीं मान सकता था।

और और रद्दोबदल।

मैं ऊपर यह कह चुका हूं कि जो दारोग़ा मुझ पर तैनात था वह मेरे साथ कुछ कड़ा व्यवहार करता था। पर यह हालत अधिक दिनों तक न रही। जब उसने जाना कि मैं, तो स्वयं सरकार से भी भोजन इत्यादि विषयों में झगड़ा कर बैठता हूं, परन्तु साथ ही उसकी सभी आज्ञाओं का पालन भी करता हूं, तब उसने अपना बरताव बदल दिया। वह मुझ

जो मन आता करने देता। यहां तक कि पाख़ाने और नहाने इत्यादि की अड़चन दूर हो गई। इसके सिवा वह यह भी नहीं जताता कि उसका हुक्म मुझ पर चल सकता है। उस का तबादला होने पर उसकी जगह जो दूसरा दारोग़ा आया, वह तो बड़ा ही उदार था। वह मुझे उचित और योग्य सुभीता देने की चिन्ता रखता। वह कहता कि जो आदमी अपनी जाति के लिए लड़ता है उसे मैं पसन्द करता हूं। मैं स्वयं लड़ने वाला हूं। तुम्हें मैं क़ैदी नहीं समझता। वह इस तरह बड़ी आशाभरी बातें करता।

थोड़े दिन बाद मुझे सवेरे शाम आधे आधे घंटा तक जेल की गली में टहलने की इजाज़त मिली। जब बाहर बैठ कर काम करने लगा तब भी यह सिलसिला जारी रहा। जिन क़ैदियों को बैठकर काम करना पड़ता था उन पर भी यह नियम लागू समझा जाता है।

मेरी मांग के अनुसार मुझे बेंच नहीं मिली, थोड़े दिनों के बाद बड़े दारोग़ा से उसने वह भी दिलवा दी। जनरल स्मट्स की ओर से मुझे दो धार्मिक पुस्तकें भी मिली थीं। इन बातों से मैंने अनुमान किया कि मुझे जो कष्ट दिया जा रहा है वह उनकी आज्ञा से नहीं बल्कि उनकी तथा औरों की लापरवाही और मुझे काफ़िरों में गिनने के कारण। और यह बात तो मैं अच्छी तरह जान गया कि मैं जो अकेला रक्खा गया हूं उसका कारण केवल यही है कि मैं औरों से बात-चीत न कर सकूं। कुछ कोशिश करने पर मुझे नोटबुक और पेन्सिल की भी इजाज़त मिली।

डिरेक्टर से मुलाक़ात।

मेरे प्रिटोरिया पहुंचने के आरम्भ में ख़ास तौर पर

आज्ञा लेकर मि० लीचिन स्टाइन मुझ से मिले। वे सिर्फ आफ़िस के काम के सम्बन्ध में आये थे। परन्तु उन्होंने मुझ से अपनी राज़ीख़ुशी के हालचाल वग़ैरह भी पूछे। इस का जवाब देने में मैं ख़ुश न था। परन्तु उन्होंने जब बहुत ही आग्रह किया तब मैंने कहा—मैं ज़ियादह तो नहीं कहता, परन्तु इतना ही कहता हूँ—मेरे साथ बड़ा निर्दय-घातक बरताव हो रहा है। इस तरह मुझे सताकर जनरल स्मट्स मुझे हराना—सत्याग्रह से हटाना चाहते हैं, परन्तु यह तो कभी सम्भव नहीं। जो जो यातनायें मुझे दी जांयगी, मैं सहने को तैयार हूं। मेरा मन शान्त है। यह बात आप प्रकट न कीजिएगा। जब छूट जाऊंगा, स्वयं सब बातें संसार के सम्मुख रक्खूंगा, तथापि मि० लीचिन स्टाइन ने यह कथा मि० पोलक से कह दी। मि० पोलक भी उसे न हज़म कर सके। उन्होंने भी औरों से कह सुनाई। जब मि० डेविड पोलक ने लार्ड सेलबारेन को लिखा और तहक़ीक़ात आरम्भ हुई, तब डिरेक्टर मुझ से मिलने आये। उनसे भी मैंने वेही बातें कहीं। इसके अतिरिक्त उनसे मैंने उन त्रुटियों का भी ज़िक्र किया जिनका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूँ। इसके कोई दस दिन बाद मुझे सोने के लिए चौकी, तकिया तथा रात को पहनने के लिए क़मीज़ और नाक पोंछने को रूमाल मिले। इस विषय पर मैंने लेख लिखाया है कि इस तरह प्रत्येक हिन्दुस्तानी क़ैदी को इन चीज़ों की आवश्यकता है। यदि सच कहा जाय तो सोने-बैठने के बारे में गोरों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी अधिक नाज़ुक हैं। बिना तकिया के काम चलाना उनके लिए बड़ा कठिन है।

इस तरह खाने तथा खुली हवा में काम करने के

सुभीते के साथ सोने की भी सुविधा हो गई। पर मेरी तक़दीर तो आगे दौड़ती थी। चौकी मिली भी तो वह खटमलों से भरी हुई। मैं तो कोई दस दिन तक उसे काम में न लाया। फिर जब बड़े दारोग़ा ने उसे ठीक कराया तब मैं उस पर सोने लगा। पर इस बीच में मुझे फ़र्श पर कम्बल डाल कर सोने की आदत पड़ गई थी। इस से चौकी के कारण मुझे कुछ विशेष फेरफार नहीं जान पड़ा। तकिये का काम मैं अपनी पुस्तकों से लेता था। अतएव तकिया मिलने से भी कोई विशेषता अनुभव न हुई।

हथकड़ी पहिनाई गई।

आरम्भ में मेरे साथ जो बरताव किया जाता था, और उससे जो विचार मेरे मन में आये थे, नीचे लिखी घटना से वे और भी पुष्ट हो गये। चार ही पांच दिनों के बाद मिसेज़ पिले के मुक़दमे में मुझे गवाही देने का सम्मन मिला। मुझे अदालत में लिवा ले गये। उस समय मेरे हाथों में हथकड़ी डाली गई। दारोग़ा ने उसे कसा भी ज़ोर से था। मैं तो समझता हूं यह अनजान में ही किया गया था। बड़ा दारोग़ा भी मुझे देखने आया था, उससे मैंने एक किताब ले जाने की मन्ज़ूरी मांगी। उसने समझा कि बेड़ी से मैं शरमाता हूँ। उसने कहा कि पुस्तक दोनों हाथों में थाम लो ताकि बेड़ी देख न पड़े। यह सुन कर मैं तो हँस पड़ा। बेड़ी डालने में मैंने तो अपना गौरव समझा। जो पुस्तक मैंने ली थी वह अनायास ही ऐसी मिल गई थी, जिसके नाम का अर्थ हिन्दी में होता है, "ईश्वर का इजलास तेरे हृदय में है।" मैंने मन में कहा यह भी मौक़ा अच्छा रहा। बाहर से मैं चाहे जितना संकट भोगूं पर यदि मेरा हृदय ऐसा है कि उस में

ईश्वर निवास कर सके, तो फिर मुझे किसी की भी परवाह नहीं। इस ढंग से मुझे अदालत में पैदल जाना पड़ा। लौटती बार जेल की ठेलागाड़ी आई थी। हिन्दुस्तानियों को शायद यह ख़बर लग गई थी कि मैं जाने वाला हूं। क्योंकि अदालत के सामने कितने ही हिन्दुस्तानी जमा थे। उनमें से मिस्टर त्र्यम्बकलाल व्यास, मिसेज़ पिल्ले के वकील के द्वारा मुझ से मिल सके थे। एक बार और मुझे अदालत जाना पड़ा था। उस दफ़े भी हथकड़ी डाली गई थी। परन्तु जाती आती बार ठेला गाड़ी थी।

सत्याग्रह की महिमा।

ऊपर मैंने जो बातें लिखी हैं उनमें कितनी ही तो नगण्य हैं। परन्तु उनके सविस्तर वर्णन का उद्देश्य यह है कि छोटी बड़ी सब बातों में सत्याग्रह लागू हो सकता है। छोटे दारोग़ा ने मुझे जो शरीर-कष्ट दिये उन्हें मैंने स्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि मेरा मन शान्त रहा। यही नहीं, बल्कि वे ही अड़चनें उन्हीं लोगों को दूर करनी पड़ीं। यदि मैं उनका प्रतिरोध करता तो मेरा मनोबल बिखर जाता और मुझे जो बड़े काम करने थे, वे न हो पाते। इसके सिवा दारोग़ा मेरे शत्रु हो जाते। भोजन के विषय में अपनी टेक रखने, आरम्भ में दुःख सहन करने से वह अड़चन भी दूर हो गई। क्षुद्र बातों के विषय में भी ऐसा ही समझा जा सकता है। परन्तु बड़े से बड़ा लाभ तो यह हुआ कि शारीरिक कष्ट सहन करने से मैं अपने मन का बल बहुत ही बढ़ा हुआ देखता हूं। इन तीन महीनों ने मुझे बड़ा लाभ पहुंचाया। इसी की बदौलत आज मैं और भी अधिक कष्ट भोगने को तैयार हूं। मैं देखता हूं कि सत्याग्रही की सहायता ईश्वर

सर्वदा करता है। और सत्याग्रही की परीक्षा लेने में भी उसको उतना ही कष्ट दिया जा सकता है जितना वह जगत्-कर्ता सहन कर सकता है।

मैंने क्या पढ़ा ?

मेरे दुःख की अथवा सुख की, दोनों की कहानी तो पूरी हो गई। इन तीन महीनों में मुझे कितने ही लाभ हुए। उन सब में बड़ा लाभ मैंने यह पाया कि, मुझे पढ़ने का खूब मौक़ा मिला। मैं स्वीकार करता हूं कि पहले पहल तो किन्हीं विचारों के कारण मैं दुःख से ऊब उठा था। फिर जिनके मन—हृदय—है उनका मन तो बन्दर की तरह छटपटाता है। ऐसे समय में बहुतेरे आदमी हिम्मत हार जाते हैं। उस समय मेरी पुस्तकों ने मेरा खूब बचाव किया। हिन्दुस्तानी भाइयों के समागम की अधिकांश पूर्ति मेरी पुस्तकों ने की। हमेशा कोई तीन घन्टे तक मुझे पढ़ने का अवकाश मिला करता था। सवेरे एक घण्टे फुरसत रहती थी; क्योंकि मैं खाना नहीं खाता था। वही समय बच रहता था। शाम को भी यही हाल था। और दोपहर को खाना भी खाता था और पढ़ता भी जाता था। शाम को तो यदि विशेष थका हुआ न होता, तो बत्ती जलने के बाद भी पढ़ता था। शनिवार और रविवार को तो खूब ही वक़्त मिलता। इस बीच में मैंने कोई तीस किताबें पढ़ीं, और कितनों ही का मनन भी किया। पुस्तकें अंगरेज़ी, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत तथा तामिल भाषाओं की थीं। अंगरेज़ी पुस्तकों में उल्लेख-योग्य टालस्टाय, इमरसन तथा कारलाइल की पुस्तकें थीं। पहली दो पुस्तकों का सम्बन्ध धर्म से है। उनके साथ मैंने बाइबिल भी जेल में से ली थी। टालस्टाय के लेख तो इतने सरस और इतने सरल हैं कि

चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हें पढ़ कर उन से लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढ़ कर साधारणतः यह विश्वास अधिक होता है कि, वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा।

कारलाइल की पुस्तक फ्रेंच राज-क्रान्ति पर है। वह प्रभावशाली है। उस से मैं जान गया कि, हिन्दुस्तान की दुर्दशा मिटाने की राह हमें गोरी प्रजा से नहीं मिल सकती। मेरा विश्वास है कि राज-क्रांति से फ्रेंच प्रजा को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैज़िनी का भी यही ख़याल था। इस विषय में बहुत मत-भेद है। उसका विचार करने का यह स्थल नहीं। परन्तु उस इतिहास में भी कितने ही सत्याग्रहियों के उदाहरण देखने में आये। गुजराती, हिन्दी और संस्कृत इन पुस्तकों में स्वामी जी की तरफ़ से भेजी गई वेद-शब्द संज्ञा, भट्ट केशवराम के प्रात उपनिषद्, मि० मोती लाल दीवान की भेजी हुई मनुस्मृति, फिनिक्स में छपा हुआ रामायणसार, पातञ्जलि योगदर्शन, नाथूराम कृत आह्निक-प्रकाश, प्रोफ़ेसर परमानन्द की दी हुई सन्ध्या की गुटका, गीता तथा स्वर्गीय कवि रायचन्द की पुस्तकें, ये किताबें पढ़ीं। इन सब में से विचार करने की बहुत सामग्री मिली। उपनिषद् से मुझे बहुत शान्ति मिली। उसका एक वाक्य तो मेरे हृदय पर अंकित हो गया। उसका सार यह है—"जो कुछ करो आत्मा के कल्याण के लिए करो।" और भी कितनी ही विचारणीय बातें उपनिषदों में मुझे मिलीं। परन्तु सब से अधिक सन्तोष कवि रायचन्द की पुस्तकों से मिला। उनके लेख तो मेरी राय में सब के आदर के पात्र हैं। टाल्स्टाय की तरह उनकी शैली भी उच्च कोटि की है। इसके तथा सन्ध्या की

पुस्तक के कितने ही भाग मैंने कण्ठ कर लिये थे। रातको जब तक मुझे नींद न आती मैं उनका उद्घोष किया करता और रोज़ सबेरे आधा घण्टा उन्हीं पर विचार करता। कण्ठस्थ बात बारम्बार उच्चारण किया करता। इस से मन दिन रात आनन्द में रहता। जब कभी निराशा का दौरा आता तो पढ़ी हुई बातों पर विचार करने पर अन्तःकरण खिल जाता और ईश्वर का कृतज्ञ होता। इस विषय के बहुत से विचार पाठकों के सामने उपस्थित करने योग्य हैं, तथापि यहां पर उनका वर्णन प्रसंग के अनुकूल नहीं। सिर्फ़ इतना ही कहना ठीक होगा कि इस ज़माने में सद्ग्रन्थ सत्संग के अभाव की थोड़ी बहुत पूर्ति कर सकते हैं। अतएव उन हिन्दुस्तानी क़ैदियों को जो जेल में सुख पाना चाहते हैं उत्तम पुस्तकों के पढ़ने का अभ्यास रखना चाहिए।

तामिल की शिक्षा।

तामिल भाइयों ने इस लड़ाई में जैसा काम कर दिखाया है, वैसा अन्य हिन्दुस्तानियों ने नहीं। अतएव मैंने सोचा कि और किसी कारण से नहीं तो मन में और हृदय से इनका सच्चा उपकार मानने ही के लिए मुझे ध्यानपूर्वक तामिल पढ़ना चाहिए। अतएव पिछला एक महीना विशेष करके तामिल के ही पढ़ने में बिताया। ज्यों ज्यों मैं तामिल अधिक पढ़ता जाता हूं त्यों त्यों उस भाषा की खूबियां ध्यान में आती जाती हैं। बड़ी सरस और मधुर भाषा है। उसकी रचना तथा उसके पठन से ज्ञात होता है कि तामिललोगों में बड़े चतुर, विचारवान और सुज्ञ पुरुष हो गये हैं और होते हैं। सो यदि हिन्दुस्तान को एक करना है तो कितने ही मद-

रास के बाहर के हिन्दुस्तानियों को भी शामिल जानना चाहिए।

उपसंहार।

मेरी इच्छा है कि इस कहानी को पढ़ कर जिन्हें देश पर कलक नहीं है, वे लोग अपने देश से प्यार करें और सत्याग्रही बनें तथा जिन्हें कलक है वे उस पर दृढ़ रहें। जिन्होंने अपने धर्म को नहीं जाना उन्हें अपने देश पर सच्चा कलक नहीं हो सकता। मेरी यह भावना अधिक दृढ़ होती जाती है। और विषयों में तो :—

अलख नाम धुन लागी गगन में
मगन भया मन्दिर में राजी
आसन मारी सुरत दृढ़ धारी
दिया अगम घर डेरा जी

और भी—

करना फ़क़ीरी क्या दिलगीरी
सदा मगन मन रहना जी—

के अनुसार दुनियां में रह कर भी विरागी और साधु हो सकते हैं।

हो हास अथवा हो रुदन उसकी प्रकट छवि देख लूं।
तो मैं जगत में मनुज-जीवन सफल अपना लेख लूं॥
जिन से कभी सुख स्वप्न में भी दर्श-सुख लेते बना।
भाती नहीं उन के मनों में और कोई भावना॥

॥ इति ॥

प्रताप-पुस्तक-माला

अबतक नीचे लिखी १८ पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं:-

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
१ मेरे जेल के अनुभव	महात्मा गाँधी	।=)
२ देवी जोन, अर्थात् स्वतन्त्रता की मूर्त्ति	श्रीमती बाला जी	॥)
३ भारत के देशी राष्ट्र	श्रीसंपूर्णानंद वर्मा बी. एस. सी.	॥।)
४ राष्ट्रीय-वीणा	प्रताप की कविताओं का संग्रह	॥=)
५ जर्मन जासूस की रामकहानी	'एक जर्मन जासूस'	।-)
६ युद्ध की कहानियां	श्री शिवनारायण मिश्र	।)
७ कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक)	श्री माखनलाल च० मं० कर्मवीर	॥)
८ भीष्म (नाटक)	श्री विश्वम्भर नाथ 'कौशिक'	॥)
९ उद्योगी पुरुष	श्री रामेश्वर प्र० शर्मा	।=)
१० रूस का राहु	श्री विश्वम्भर नाथ 'कौशिक'	।=)
११ श्रीकृष्ण चरित्र	डा० सूर्य्यकुमार वर्मा	।=)
१२ त्रिशूल-तरङ्ग	कविवर 'त्रिशूल'	॥=)
१३ चेतसिंह और काशी का विद्रोह	श्रीसंपूर्णानंद वर्मा बी. एस. सी	।=)
१४ फ़िजी में भारतीय	'एक भारतीय हृदय'	॥।)
१५ साम्यवाद	"एक ग्रेजुएट"	।=)
१६ रूस की राज्यक्रान्ति	श्री रमाशङ्कर अवस्थी	२॥)
१७ एशियानिवासियों के प्रति यूरो०	डा० छेदीलाल एम. ए.	॥=)
१८ चीन की राज्यक्रान्ति	श्रीसंपूर्णानंद वर्मा बी. एस. सी	१॥)

शीघ्र प्रकाशित होनेवाली हैं:-	लेखक	लगभग
१९ म० नन्दकुमार को फाँसी	चण्डीचरण सेन	३)
२० वज्राघात	स्व० हरनारायण आपटे	३)
२१ हृदय	श्री शिवनारायण मिश्र	१)

हमारी अन्यान्य पुस्तकें।

—:o:—

१ भारतीय इतिहास में स्वराज्य गूंज—ले० मि० त्रिसेंट ।=)
२ कांग्रेस का इतिहास—ले० श्रीसूर्य्यनारायण बी० ए० ॥-)
३ आयर्लैंड में होमरूल—ले० सूरेन्द्रनारायण त्रि० बी० ए०॥-)
४ आयर्लैंड में मातृभाषा—ले० (एक विद्वान) ... ।=)
५ बीसवीं सदी का महाभारत—ले० विनयकुमार सरकार एम० ए० ॥)
६ राजनीति प्रवेशिका—ले० एक विद्वान ... ।=)
७ हमारा भीषण ह्रास—ले० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी०ए० ।)
८ भक्तियोग—ले० स्वामी विवेकानन्द
९ राजयोग—ले० स्वामी विवेकानन्द ... ।=)
१० कुसुमाञ्जलि—ले० कविवर 'सनेही' ... ।=)
११ कृषक-क्रन्दन— " ... =)
१२ बालधर्म शिक्षक—ले० महाशय काशीनाथ ... -)॥
१३ दादाभाई नौरोजी—ले० श्री० रामेश्वर प्रसाद शर्मा ... ।)
१४ रानाडे की जीवनी— " =)॥
१५ चम्पारन की जांच—(रिपोर्ट) ... =)।
१६ स्वराज्य पर मालवीय जी (व्याख्यान) ... ।-)
१७ स्वराज्य पर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर (लेख) ... ।)
१८ कलकत्ते में स्वराज्य की धूम (व्याख्यान) ... ।)
१९ शिक्षा-सुधार—ले० महाशय काशीनाथ ... ।)
२० भगवान बुद्धदेव— " ... ।)
२१ फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष—ले० पं० तोताराम सनाढ्य ।)
२२ वन्देमातरम् चित्राधार (अलबम) ... २)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

प्रताप पुस्तकालय, कानपुर।